I.S.S.N. 0971 - 9

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 14, अंक - 1 जनवरी - मार्च 2002

Vol. - 14, Issue-1 Jan.- Mar. 2002

सरस्वती : वाग्देवी

12 वीं शताब्दी, पल्लु, बीकानेर (राज.) (राष्ट्रीय संग्रहालय, देहली)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JNANAPITHA, INDORE

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भगवान महावीर' : जीवन एवं दर्शन' राष्ट्रीय संगोष्ठी
इन्दौर, 24-25 फरवरी 2002

'भगवान महावीर : जीवन एवं दर्शन' राष्ट्रीय संगोष्ठी (इन्दौर 24-25 फरवरी 02) में विशिष्ट अतिथि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह जैन कासलीवाल का सम्मान करती हुई दिगम्बर जैन महिला संगठन, इन्दौर की बहनें

संगोष्ठी के समापन सत्र में प्रथम अर्हत् वचन पुरस्कार - 2002 से डॉ. शकुन्तला जैन (उज्जैन) को सम्मानित करते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद निदेशक प्रो. ए.ए. अब्बासी । समीप है प्रो. धाकड़, प्रो. बंडी एवं श्रीमती मीना विनायक्या (इन्दौर)

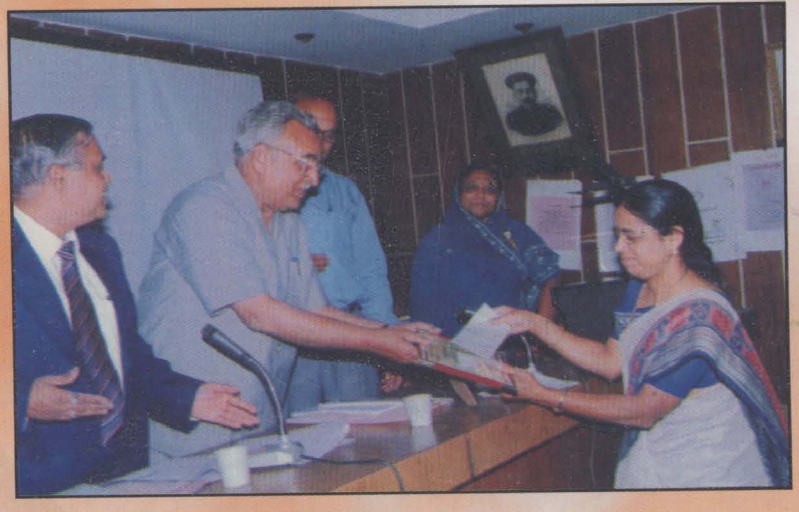

संगोष्ठी के समापन सत्र में तृतीय अर्हत् वचन पुरस्कार - 2002 से डॉ. संगीता मेहता (इन्दौर) को सम्मानित करते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद निदेशक प्रो. ए.ए. अब्बासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I.S.S.N. - 0971-9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 14, अंक 1 — **जनवरी - मार्च 2002**
Volume 14, Issue 1 — **January - March 2002**

मानद - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017 भारत
☎ 0731 - 787790, 545421

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College,
INDORE - 452 017 INDIA
E.mail : Kundkund@sancharnet.in

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA
☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादक मंडल / Editorial Board
2001 - 2002

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics & Principal
Jabalpur - 482 002

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Ganita Bhārati,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
रसायन भौतिकी समूह, रसायन शास्त्र विभाग
ओक्लेहोमा विश्वविद्यालय,
स्टिलवाटर OK 74078 USA

Prof. Parasmal Agrawal
Chemical Physics Group, Dept. of Chemistry
Oklehoma State University,
Stillwater OK 74078 USA

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 जापान

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Institute,
Dishisha University,
Kyoto - 610 - 03 Japan

श्री सूरजमल बोबरा
निदेशक - ज्ञानोदय संस्थान
इन्दौर - 452 003

Shri Surajmal Bobra
Director - Jñānodaya Sansthan
Indore - 452 003

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'
शोधाधिकारी - सिरि भूवलय परियोजना
इन्दौर - 452 001

Dr. Mahendra Kumar Jain 'Manuj'
Research Officer - Siri Bhuvalaya Project
Indore - 452 001

सम्पादकीय पत्राचार का पता

डॉ. अनुपम जैन
'ज्ञान छाया',
डी - 14, सुदामा नगर,
इन्दौर - 452 009

Dr. Anupam Jain
'Gyan Chhaya',
D - 14, Sudama Nagar,
Indore - 452 009

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 125=00	रु./Rs. 250=00	U.S. $ 25=00
10 वर्ष हेतु / 10 Years	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 500.00/ U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।

सदस्यता एवं विज्ञापन शुल्क के म.आ./चेक/ड्राफ्ट **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर** के नाम देय ही प्रेषित करें। इन्दौर के बाहर के चेक के साथ कलेक्शन चार्ज रु. 25/- अतिरिक्त जोड़कर भेजें।

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 14, अंक - 1, 2002

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5

प्रकाशकीय अनुरोध 7

लेख / ARTICLES

Area of Bow-figure in Jaina Mathematics 9
☐ R. C. Gupta, Jhansi

Mathematics in Mahāvīra's Tradition 17
☐ Anupam Jain, Indore

The Mensuration of a Conch in Ancient India 31
☐ Dipak Jadhav, Barwani & Padmavathamma, Mysore

Mathematical Formulary of Jinistic Precepts 55
☐ N. L. Jain, Rewa

जैन गणित पर आधारित नारायण पंडित के कुछ सूत्र 61
☐ राधाचरण गुप्त, झाँसी

जैन साहित्य में ध्वनि/शब्द विज्ञान 71
☐ अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर

आधुनिक मस्तिष्क सम्बन्धी खोजें (जैन कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में) 75
☐ प्रभा जैन एवं लक्ष्मीचन्द्र जैन, जबलपुर

समीक्षा / REVIEW

जीवन क्या है ? द्वारा डॉ. अनिलकुमार जैन 87
☐ सूरजमल जैन बोबरा, इन्दौर

आख्या / REPORTS

'भगवान महावीर : जीवन एवं दर्शन' राष्ट्रीय संगोष्ठी, इन्दौर, 24 - 25 फरवरी 2002 89
☐ सूरजमल जैन बोबरा, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार (2000) समर्पण समारोह, दिल्ली, 6 जनवरी 2002 93

□ हंसकुमार जैन, मेरठ

गतिविधियाँ 97

मत – अभिमत 103

आगामी अंक

1. अर्हत् वचन का आगामी अंक **14** (2), अप्रैल - जून 2002 **जैन गणित अंक – 2** के रूप में जून 2002 में प्रकाशित किया जा रहा है। गणित एवं विज्ञान से सम्बद्ध अनेक आलेख हम इस अंक में प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं। इन्हें **14** (2) में स्थान देंगे।
2. अहिंसा, शाकाहार एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु सम्पूर्ण जीवन संघर्षरत रहे स्व. **डॉ. नेमीचन्द जैन** की स्मृति में **14** (3), जुलाई 2002 अंक **अहिंसा, शाकाहार एवं पर्यावरण संरक्षण** को समर्पित होगा। सन्दर्भित सामग्री 30 जून 2002 से पूर्व आमंत्रित है।

निदेशक मंडल – सन् 2001 – 2002

अध्यक्ष
प्रो. ए.ए. अब्बासी
पूर्व कुलपति,
बी - 417, सुदामा नगर,
इन्दौर – 452 009
फोन : 0731 - 482898

सचिव
डॉ. अनुपम जैन
स. प्राध्यापक - गणित,
शा. होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञान छाया', डी - 14, सुदामा नगर,
इन्दौर – 452 009
फोन : 0731 - (नि.) 787790 (का.) 545421

सदस्य

1. **प्रो. आर. आर. नांदगांवकर**
पूर्व कुलपति,
चन्द्रदीप अपार्टमेन्ट, निकालस मन्दिर, इतवारी,
नागपुर – 440 002
फोन : 0712 - 763186

2. **प्रो. नलिन के. शास्त्री**
कुलसचिव - बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, रायबरेली रोड़,
लखनऊ (उ.प्र.)
फोन : 0522 - 440822

3. **प्रो. सुरेशचन्द अग्रवाल**
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष - गणित,
ए - 2, चौधरी चरणसिंह वि.वि. परिसर,
मेरठ – 250 404 (उ.प्र.)
फोन : 0121 - 762526

4. **डॉ. एन.पी. जैन**
पूर्व राजदूत,
ई - 50, साकेत,
इन्दौर – 452 001
फोन : 0731 - 561273

5. **डॉ. प्रकाशचन्द जैन**
91/1, गली नं. 3, तिलकनगर,
इन्दौर – 452 001
फोन : 0731 - 490619

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

Fourth International Congress of Mathematician, रोम, अप्रैल 1908 में Teachers College, Columbian University, New York (U.S.A.) के गणित के प्राध्यापक ***Prof. David Eugen Smith*** *द्वारा नवीं शताब्दी के महान दिगम्बर जैनाचार्य* ***महावीर*** *द्वारा रचित गणितसार संग्रह पर शोध पत्र प्रस्तुत करने से पूर्व विश्व समुदाय को भारतीय गणित की इस विशिष्ट शाखा Jaina School of Mathematics की कोई जानकारी नहीं थी। मद्रास के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में संस्कृत एवं तुलनात्मक दर्शन के प्राध्यापक एवं गवर्नमेन्ट ओरियंटल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास के क्यूरेटर* ***रायबहादुर प्रो. एम. रंगाचार्य*** *द्वारा गणितसार संग्रह की खोज कर अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पणियों सहित 1912 में मद्रास गवर्नमेन्ट के माध्यम से प्रकाशन किया गया था। इस प्रकाशन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान विशेषत: गणित इतिहासज्ञ जैन गणितज्ञों की ओर आकृष्ट हुए एवं विश्व विख्यात गणित इतिहासज्ञ प्रो. विभूति भूषण दत्त (स्वामी विद्यारण्य) ने प्राथमिक सर्वेक्षण के उपरान्त 1929 में Bulletin of Calcutta Mathematical Society में Jaina School of Mathematics शीर्षक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आलेख प्रकाशित किया। इसके बाद अनेक विद्वानों ने शोधपूर्ण आलेखों का अनवरत प्रकाशन किया जिससे 'जैन गणितज्ञ वर्ग' भारतीय गणित की एक महत्त्वपूर्ण धारा के रूप में स्थापित हुआ। वर्तमान में भी इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान कार्य गतिमान है। जैनाचार्यों के गणितीय अवदान अथवा प्राचीन जैन ग्रन्थों में उपलब्ध गणितीय सिद्धान्तों/विवेचनों/प्रयोगों का विस्तृत अध्ययन करने वाले विद्वानों में से कतिपय प्रमुख नाम निम्नवत् हैं -*

विदेश

1. *Prof. A.I. Volodarsky, Moscow (Russia)*
2. *Prof. David Eugen Smith, New York (U.S.A.)*
3. *Dr. Takao Hayashi, Kyoto (Japan)*

भारत

Dr. A.K. Bag (New Delhi), Prof. A.N. Singh (Lucknow), Dr. Anupam Jain (Indore), Prof. B.B. Dutt (Calcutta), Prof. B.S. Jain (Delhi), Mr. Dipak Jadhav (Barwani), Dr. H.R. Kapadia (Baroda), Prof. K.S. Shukla (Lucknow), Prof. L.C. Jain (Jabalpur), Dr. M.B. Lal Agrawal (Agra), Mrs. Mamta Agrawal (Meerut), Dr. N.C. Shastri (Arrah), Dr. N.L. Jain (Rewa), Prof. P.M. Agrawal (Ujjain), Prof. Padmavathamma (Mysore), Dr. Parmeshvar Jha (Supaul), Prof. R.S. Lal (Shiwan), Prof. S.C. Agrawal (Meerut), Prof. S.R. Sharma (Aligarh), Prof. S.R. Sinha (Allahabad), Dr. S.S. Lishk (Patiala), Swami Satya Prakash (Allahabad), Dr. Sabal Singh (Agra), Prof. T.A. Saraswati (Dhanbad), Dr. Usha Asthana (Lucknow) आदि।

इन विद्वानों के कृतित्व पर व्यापक सर्वेक्षणात्मक आलेख हम ***14*** *(2), अप्रैल - जून 2002 अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। साथ ही कतिपय प्रकाशित महत्त्वपूर्ण कृतियों एवं शोध प्रबन्धों की समीक्षा भी देंगे। इन विद्वानों के कृतित्व को समाहित करने वाली एक सुसम्पादित सर्वांगपूर्ण कृति की आज नितान्त आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि प्रबुद्ध श्रेष्ठि अथवा सक्रिय शोध संस्थान इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु आगे आयेंगे।*

सम्पूर्ण जैन साहित्य के विषयानुसार विभाजन के क्रम में इसे आचार्य समन्तभद्र ने चार अनुयोगों में विभाजित किया था। जिसके अन्तर्गत - (1) प्रथमानुयोग, (2) करणानुयोग, (3) चरणानुयोग, (4)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यानुयोग में से करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग में प्रचुर मात्रा में गणितीय सामग्री निहित है। इनमें गणितीय सामग्री की इतनी प्रचुरता है कि पं. टोडरमल (1740-67 ई.) ने तो यहाँ तक लिखा है कि बिना गणितीय ज्ञान के इन ग्रन्थों को भली प्रकार समझना संभव नहीं है एवं इसी उद्देश्य से उन्होंने अपनी टीका में स्वतंत्र अर्थ संदृष्टि अधिकार का सृजन भी किया। अत्यन्त प्राचीन काल में भी स्वतंत्र पूर्णत: गणितीय ग्रन्थों का सृजन किया गया था। ***परियम्मसुत्तं, सिद्धभूपद्धति, वृहद्धारा परिकर्म*** *शीर्षक तीन गणितीय ग्रन्थों के उल्लेख हमें क्रमश: धवला, उत्तरपुराण एवं त्रिलोकसार में मिलते हैं। प्राकृत एवं अर्द्धमागधी के गद्य एवं पद्य मय ग्रन्थों के उद्धरण भी प्राचीन ग्रन्थों में प्रचुरता से उपलब्ध हैं।* ***वक्षाली हस्तलिपि*** *एवं* ***'फी संकलित इल-अदद जैनिस्फ'*** *के जैन ग्रन्थ होने की संभावना से पूर्णत: इनकार नहीं किया जा सकता।*

संक्षिप्तत: गणित का जैन साहित्य में विशिष्ट स्थान है। जैनों का अद्वितीय कर्म सिद्धान्त पूर्णत: गणितीय है। गणित के वैशिष्ट्यों को दृष्टिगत कर ही हमनें जैन गणित पर अर्हत् वचन के 2 अंक समर्पित करने का निश्चय किया। ***14*** *(1) आपके हाथों में है एवं* ***14*** *(2) हम शीघ्र ही आपके पास पहुँचायेंगे जिसमें जैन गणित के क्षेत्र में नवीन प्रकाशनों, अब तक सम्पन्न कार्य की सूचनाओं के साथ ही कतिपय नितान्त मौलिक आलेख भी प्राप्त होंगे। प्रस्तुत अंक में संकलित लेखों पर सुधी पाठकों की प्रतिक्रियायें सादर आमंत्रित हैं।*

हम प्रस्तुत अंक के लेखकों, सम्पादक मंडल एवं निदेशक मंडल के माननीय सदस्यों, दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के सभी सम्मानित ट्रस्टीगणों के प्रति आभार ज्ञापित करते हैं जिनके सतत संरक्षण एवं सहयोग का ही प्रतिफल यह अंक है। होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य ***प्रो. नरेन्द्र धाकड़*** *तथा गणित विभाग के सभी प्राध्यापकों का परोक्ष सहयोग भी अविस्मरणीय है। उसके बिना इस दायित्व का निर्वाह असंभव है। आज के अर्थ प्रधान युग में शोध पत्रिकाओं का संचालन लगभग असंभव है किन्तु माननीय* ***श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल*** *एवं* ***श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल*** *की वैयक्तिक अभिरूचि एवं निर्विकल्प समर्थन से ही अर्हत् वचन आप तक पहुँचाना संभव हो पा रहा है। अंक की सभी न्यूनताओं एवं त्रुटियों हेतु मैं स्वयं अपना दायित्व स्वीकार करते हुए आशा करता हूँ कि आपका स्नेहपूर्ण सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त होता रहेगा।*

31.3.2002 **डॉ. अनुपम जैन**

अर्हत् वचन के सम्बन्ध में तथ्य सम्बन्धी घोषणा

(फार्म - 4, नियम - 8)

प्रकाशन स्थल	:	इन्दौर
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक एवं प्रकाशक	:	देवकुमारसिंह कासलीवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	580, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
मानद सम्पादक	:	डॉ. अनुपम जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामा नगर, इन्दौर - 452 009
स्वामित्व	:	कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
मुद्रण व्यवस्था	:	सुगन ग्राफिक्स, यूजी - 18, सिटी प्लाजा, म. गां. मार्ग, इन्दौर

मैं देवकुमारसिंह कासलीवाल एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

31.3.2002 **देवकुमारसिंह कासलीवाल**

अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रकाशकीय

वर्ष 14 (2002) का प्रथम अंक किंचित विलम्ब से आपकी सेवा में प्रेषित है। **14**(2) भी शीघ्र ही जून 2002 तक आपके हाथों में पहुँचाने हेतु हम प्रयत्नशील हैं।

अर्हत् वचन के सहयोगी सदस्य बनने हेतु हमारे अनुरोध पर उत्साहजनक प्रतिक्रिया हुई। वर्ष 1989 से 2000 तक की अवधि में रु. 1,000/- भेजकर आजीवन सदस्य बने बन्धुओं/बहनों ने रु. 1,100/- अतिरिक्त भेजकर सहयोगी सदस्यता ग्रहण की, एतदर्थ हम उनके प्रति आभार ज्ञापित करते हुए अन्य आजीवन सदस्यों से भी सहयोग का अनुरोध करते हैं। **14**(2) में हम सहयोगी सदस्यों के नाम भी प्रकाशित करेंगे। वर्ष 2001 से आजीवन सदस्यता का प्रावधान समाप्त कर उसे मात्र 10 वर्ष हेतु कर दिया है, किन्तु सहयोगी सदस्यों को पत्रिका आजीवन भेजी जाती रहेगी। कृपया ड्राफ्ट/चेक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के नाम देय प्रेषित करें।

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्म जयंती महोत्सव वर्ष की समापन बेला में हम सबके सम्मुख एक प्रश्न उपस्थित हो गया है। क्या हम इस वर्ष में भगवान महावीर के सन्देशों एवं सिद्धान्तों के व्यापक प्रचार-प्रसार में सफल हो सके? मात्र जन सामान्य में ही क्यों, अकादमिक स्तर पर भी हम जैन धर्म की मूल परम्परा को वांछित गौरव दिलाने में निरन्तर पिछड़ रहे हैं। जैनत्व के गौरव में अभिवृद्धि करने वाली किसी बड़ी शोध/अनुसंधान परियोजना के क्रियान्वयन की जानकारी हमें नहीं मिली। 'प्राकृत एवं जैन अध्ययन' तथा 'जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी के निर्माण' की परियोजना से सम्बद्ध उपसमितियों की वर्ष में अनेक बैठकें हुईं किन्तु अनुंशसित परियोजनाओं में से किसी को भी शासकीय अनुदान अद्यतन प्राप्त न होने से वे प्रारम्भ न हो सकी और उनका समयबद्ध कार्यक्रम गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ है।

सुविज्ञ सूत्रों के अनुसार कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रेषित तीनों परियोजनायें सम्बद्ध उपसमितियों में सम्मिलित विशेषज्ञों द्वारा अनुशंसित हुई हैं।

1. Decoding, Editing and Translation of Siri Bhuvalaya of Kumudendu.
2. Development of Mathematical Thoughts in Jainism.
3. Catalouging of Jaina Manuscripts in M.P. Maharashtra Region.

प्रथम दो परियोजनायें 'प्राकृत एवं जैन अध्ययन' वर्ग एवं तीसरी 'जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी के निर्माण' वर्ग में अनुशंसित हुई हैं। ज्ञानपीठ में सिरिभूवलय के डिकोडिंग की परियोजना तो 1 अप्रैल 2001 से प्रारम्भ की जा चुकी है, जिसका कार्य प्रगति पर है। शेष 2 पर भी प्रारम्भिक तैयारियाँ पूर्ण की जा चुकी हैं। एवं उन्हें प्रस्तावित प्रारूप के अनुरूप प्रारम्भ करना है। हमारा भारत सरकार से साग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुरोध है कि उक्त अनुशंसित परियोजनाओं की स्वीकृति शीघ्र प्रेषित करें, जिससे वित्तीय वर्ष 2002 - 3 में कार्य प्रारम्भ हो सके।

सिरि भूवलय परियोजना कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में 1.4.2001 से गतिमान है। इसका 1 वर्षीय प्रगति विवरण अर्हत् वचन **14** (2) में प्रकाशित किया जा रहा है। स्थायी महत्व की इस महत्वाकांक्षी परियोजना में तन, मन, धन से सहयोग हेतु हम सभी का आह्वान करते हैं। मुख्यत: कन्नड़ भाषा एवं लिपि से सुपरिचित एवं उसके वाचन, अनुवाद आदि कार्यों में सिद्धहस्त विद्वान् कृपया शीघ्र सम्पर्क करें। पांडुलिपि के 59 वें अध्याय की डिकोडिंग का कार्य पूर्णता की ओर है, इससे प्राप्त पाठ की शुद्धता के परीक्षण, विश्लेषण एवं उनमें गर्भित विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण में हमें उनकी सेवाओं की अपेक्षा है। सम्प्रति युवा विद्वान डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' इस परियोजना का कार्य देख रहे हैं। हमारे पाठकगण इस ग्रन्थ के बारे में पूर्व में सम्पादित कार्य एवं इससे सम्बद्ध समस्त सूचनाओं, इस कार्य में सहयोग करने के इच्छुक सक्षम विद्वानों के नाम, पते हम तक पहुँचाकर अपना सहयोग दे सकते हैं। इस कार्य में सहयोग करने वाले सभी विद्वानों को सभी आधारभूत सुविधाएँ एवं मानदेय आदि उपलब्ध कराने का हमारा प्रयास है।

प्रस्तुत अंक में निहित सामग्री की गुणवत्ता, उपयोगिता एवं आगामी अंकों में समाहित की जाने वाली सामग्री पर आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

31.3.2002 **देवकुमारसिंह कासलीवाल**

मुखपृष्ठ चित्र परिचय

ग्यारहवीं शताब्दी (महमूद गजनवी के 1025 से प्रारम्भ विध्वंस) से जैन मन्दिरों में आगमों की सुरक्षा हेतु सरस्वती भण्डारों के निर्माण का प्रचार बढ़ा और प्रेरणा स्वरूप सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण भी बहुतायत में हुआ। उस समय 'ज्ञान की रक्षा' की देवी के रूप में सरस्वती की मान्यता बढ़ी। पश्चिमी भारत व मध्यभारत में बहुत ही कलात्मक मूर्तियों का निर्माण हुआ। ऐसी दो मूर्तियाँ लॉस एंजिल्स काउंटी म्यूजियम ऑफ आर्ट में भी प्रदर्शित हैं।

जैन परम्परा में श्रुत देवी के रूप में सरस्वती का वन्दन 6 ठी शताब्दी से ही मूर्तिरूप में मिलता है। 11 वीं शताब्दी के पहले सरस्वती की मूर्तियाँ बैठी हुई तथा दो हाथों वाली होती थी, किन्तु 11 वीं शताब्दी से वे खड़ी व 4 हाथों वाली बनने लगीं। ऐसी ही एक मूर्ति 12वीं शताब्दी की राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित है, उसी का चित्र मुखपृष्ठ पर अंकित है।

– सूरजमल बोबरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vol. 14, No. 1, 2002, 9-15

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapitha, Indore

AREA OF BOW-FIGURE IN JAINA MATHEMATICS

■ Prof. R. C. Gupta *

1. INTRODUCTION

The *Cāpa-kṣetra* (Bow-Figure) is an important geometrical form in Jaina Cosmography. In the Jambūdvīpa, the shape of *Bharata-varṣa* and *Airāvata-varṣa* is a bow-figure which is also called segment of a circle.

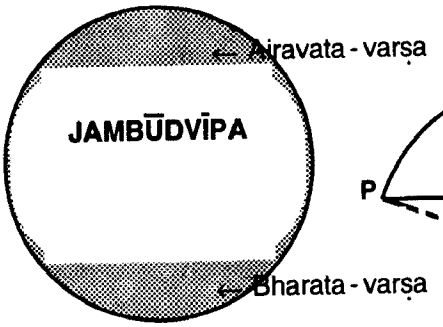

FIG.-1

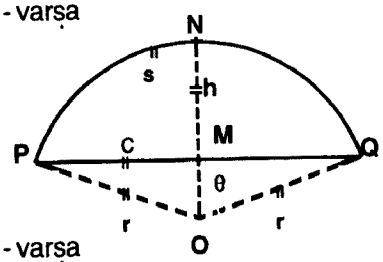

FIG.-2

In Fig. 2, PNQP is a segment of a circle (i.e. circular disc) whose centre is at O and whose radius is OP = OQ = **r**. Let the length of the arc **(cāpa)** PNQ be **s**, and the length of the chord (called **jyā** or **jīvā** etc.) PQ be **c**. The height of the segment, MN was called *śara, iṣu, bāṇa* ('arrow') etc. = **h.**

The exact relation between **c** and **h** for any segment of a circle of diameter **d** (= 2**r**) is

$$c = \sqrt{4h(d-h)} \quad \text{..... (1)}$$

This was well-known to ancient Jainas (it easily follows by applying the so called Pythagorean theorem to the right-angled triangle OPM). The usual method of finding the exact area of the circular segment takes its

$$\text{Area, } A = \text{sector OPNQ - triangle OPQ} \quad \text{..... (2)}$$
$$= (s.r)/2 - c.(r-h)/2 \quad \text{..... (3)}$$
$$= r(s-c)/2 + ch/2 \quad \text{..... (4)}$$

In terms of the semi-central angle θ subtended by the arc at the centre O,we have the formulas

* Ganita Bhārati Academy, R-20, Ras Bahar Colony, JHANSI-284003 (U.P.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$s = 2r\theta \quad \text{..... (5)}$$

$$c = 2r \sin\theta \quad \text{..... (6)}$$

$$h = r(1 - \cos\theta) \quad \text{..... (7)}$$

where $$\tan(\theta/2) = 2h/c \quad \text{..... (8)}$$

Thus a use of trignonometric functions and tables will enable us to find **s** and **A** accurately when any two of **c, h,** and **d** (= 2r) are known. In the absence of trigonometric facility or use, recourse was taken to devise suitable empirical rules for practical purpose.

For mensuration of a circle and related figures, the ancient Jainas usually employed $\pi = 3$ for practical *(vyāvahārika)* and $\pi = \sqrt{10}$ for accurate *(sūkṣma)* computations. Based on these, their rules for finding the arc-length **s** of a bow-figure were

$$\text{practical } s = \sqrt{c^2 + 5h^2}, \quad \text{..... (9)}$$

$$\text{accurate } s = \sqrt{c^2 + 6h^2}, \quad \text{..... (10)}$$

As shown by the present author,[1] these formulas belong to the prototype

$$s = \sqrt{c^2 + kh^2} \quad \text{..... (11)}$$

where k was chosen such that it yielded expected result for a semicircle (which is also a segment with c = 2r, and h = r). That is,

$$k = \pi^2 - 4 \quad \text{..... (12)}$$

2. PRACTICAL RULES FOR AREA OF BOW-FIGURE

For finding the approximate or practical *(vyāvahārika)* area of a bow-figure, Mahāvirācārya (c. 850 A.D.) in his *Gaṇita-sāra-saṅgraha* (=GSS), (VII, 43, p. 190)[2] says

कृत्वेषुगुणसमासं बाणार्धगुणं शरासने गणितम्।

Kṛtveṣuguṇasamāsaṁ bāṇārdhaguṇaṁ śarāsane gaṇitam

'The sum of the arrow and the chord, multiplied by half the arrow is the area of the bow-figure.'

That is,

$$A = (c + h).h/2 \quad \text{..... (13)}$$

The same rule is found in the *Trilokasāra, gāthā*, 762 of Nemicandra (10th century).[3] If we apply (13) for a semicircle (c = 2r, h = r), we get

$$A = 3r^2/2 \text{ (implying } \pi = 3) \quad \text{..... (14)}$$

So we say that (13) is based on the *vyāvahārika* value $\pi = 3$.

The most interesting fact about (13) is that it was known either as such or with some modifications to suit other values of π, in many other civilizations including those of Egypt, Greece, China and Rome, and is also found in a Hebrew work.[4] In India also, *Śridhara* (c. 750 A.D.) had given

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

a modified form of (13) in his *Trisatikā*, (sūtra 47) as follows[5]

जीवाशरैक्यदलहतशरस्य वर्गं दशाहतं नवाभिः।
विभजेदवाप्तमूलं प्रजायते कार्मुकस्य फलम्॥ 47॥

'Take ten times the square of the product of the arrow and half the sum of the chord and arrow, and divide by nine. The square-root of the quotient (so obtained) gives the area of the bow-figure.'

That is,

$$A = \sqrt{[h.(c+h)/2]^2.(10/9)} \quad \text{..... (15)}$$

Clearly this is a modification of (13) based on an adjustment of π from the rough value $\pi = 3$ to the better (Jaina) value $\pi = \sqrt{10}$. The rule (15) is also found in the Prakrit work *Gaṇitasāra* (III, 46) of the Jaina author Ṭhakkura Pherū (14th century).[6] Although it is possible that (13) was known to ancient Jainas and (15) was its natural modification for $\pi = \sqrt{10}$, for accurate calculations they invented a simpler rule which will be discussed in the next section. Another practical rule will also be dealt therein.

3. SPECIAL JAINA RULE FOR AREA OF BOW-FIGURE

The *Tiloyapaṇṇatti*, IV, 2401, of Yatīvṛṣabha contains the following verbal statement of a *sūkṣma* ('accurate') rule.[7]

इसु - पाद - गुणिद - जीवा, गुणिदव्वा दस - पदेन जं वग्गं।
मूलं चावायारे, खेत्तेत्थं होदि सुहुम - फलं॥ 2401॥

'The square of the product of a quarter **iṣu** (=h) and the **chord** (=c) is multiplied by ten. The square-root of the result is the accurate **(suhuma)** area of the bow-figure.'

That is,

$$A = \sqrt{10(c.h/4)^2} \quad \text{..... (16)}$$

The same rule is said to be found in the *Bṛhatkṣetra-samāsa* (I, 122) of Jinabhadra Gaṇi (H.A.D. 609). The first half of a *gāthā* quoted by Bhāskara I in his commentary (A.D. 629) on the *Āryabhaṭīya* (under II, 10) reads[8]

इसुपायगुणा जीवा दसिकरणि भवेद् विगणिय पदम्।

'The product of the chord and a quarter of the arrow when further multiplied by the sqaure-root of ten becomes the area of the bow-figure.'

That is,

$$A = \sqrt{10}\ c.h/4 \quad \text{..... (17)}$$

which is just a simplified form of (16) and which is also found in the GSS, VII, 70 (p. 198) of Mahāvīra. Nemicandra follows Mahāvīra in this respect.[9]

For a semi circle, the rule (16) or (17) gives the area

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$A = \sqrt{10}.r^2/2 \quad \text{..... (18)}$$

and implies the usual 'accurate' Jaina value $\pi = \sqrt{10}$. The corresponding *vyāvahārika* rule, for the area of a bow-figure, based on the simple practical value $\pi = 3$ will be

$$A = 3\ c.h/4 \quad \text{..... (19)}$$

which is not found in the mentioned works of Mahāvīra and Nemicandra. Thus we find that for the area of a bow-figure two apparently different type of rules were used by the Jainas. A comparison of the three rules (13), (15) and (19) along with

$$A = \pi\ ch/4 \text{ (with true } \pi) \quad \text{..... (20)}$$

and the modern exact area

$$A_0 = r^2\ (\theta - \sin\theta.\cos\theta) \quad \text{..... (21)}$$

is presented in the accompanying TABLE (in which we have assumed r = 1 for convenience).

TABLE (to 3 decimal places)

Sl. No.	θ	True Area A_0	Practical Area $A = (c+h)h/2$	Śrīdhara's $\sqrt{10}.(c+h)h/6$	Area by 3 ch/4	Area by π ch/4
1	0^0	0.000	0.000	0.000	0.000	0.000
2	15^0	0.012	0.009	0.010	0.013	0.014
3	30^0	0.091	0.076	0.080	0.101	0.106
4	45^0	0.285	0.250	0.264	0.311	0.327
5	60^0	0.614	0.558	0.588	0.650	0.685
6	75^0	1.059	0.991	1.044	1.074	1.132
7	90^0	1.571	1.500	1.581	1.500	1.581

We see from the table that the area given by (13) is always less than the true or actual area. In fact the values of area given by (13) are so low that even Śrīdhara's modification (15) cannot yield good results except for segments which are nearly semicircles. This poor yield of values may be a reason due to which the Jainas did not employ (15) for their accurate calculations.

As far as (16) is concerned, we have already discussed its accuracy etc.[10] From the table also, we find that both (19) and (20) give higher values except near the end. So the special Jaina rule (16) or (17) using higher value of π is expected to give some high yielding results. The question as to how the ancient Jainas hit upon such a peculiar rule, is considered in the next section.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. DERIVATIONS AND RATIONALES

For the area of closed round figure a general ancient prototype rule was

$$\text{Area} = (\text{perimeter}).(\text{width})/4 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (22)$$

This was usually used for a circle for which it gives exact result. Surprisingly it is also true for a square. Mahāvīra used it for *āyatavṛtta* ('elongated circle' or ellipse) in his **GSS**, (VII, 21 and 63, pp. 185 and 196).[11]

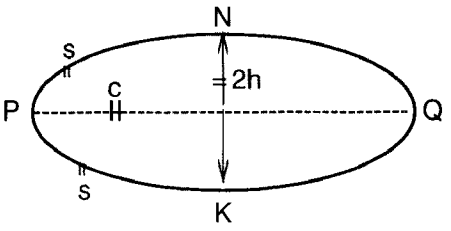

FIG. 3

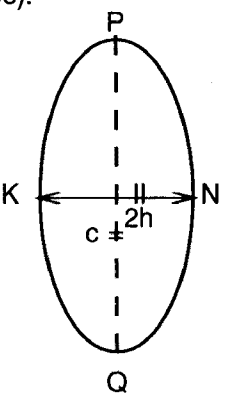

FIG. 4

If we apply (22) to the figure (see FIG. 3) formed by double segment, we will get

$$2A = (2s).(2h)/4$$

or

$$A = (s.h)/2 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (23)$$

Directly as such, this rule (23) for the area of a circular segment (FIG. 2) is found in Karvinda's commentary on the *Āpastamba Sulbasūtra*.[12] Now the following ancient empirical relation has been found

$$s = c + h \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (24)$$

Putting this in (23), we get the practical and popular classical formula (13).

The author of the present paper has discovered the presence of the simple rule (24) in an old Babylonian text (BM 85194).[13] ***Mahāvīra used this simple method for finding the vyāvahārika (approximate) perimeter of an ellipse (GSS, VII, 21), but not for its sūkṣma*** (accurate) perimeter (GSS, VII, 63). ***For arc of a circular segment his rules were different namely (9) and (10).***

On the other hand Nārāyaṇa (1356 A.D.) in his Gaṇita Kaumudī (IV, 12) ***used (24) for circular segment which was not greater than a semi-circle.***[14] ***His example on yavākāra-kṣetra*** (barley-shaped figure)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

under the next *sūtra* (IV, 13) *is quite illuminating in this matter. He treats the barley-figure in two ways, namely as made of two triangles (upper and lower in FIG. 4) and as made of double segment (FIG. 3). The given dimensions are : perpendicular width, NK = 12, and each (curvilinear) side PNQ or PKQ = 30.*

While treating the *yava*-figure as double segment (FIG. 3), we have h = 6, and from (24) c = s - h = 30 - 6 = 24 *(viloma vidhi)*.

Hence by (13), area will be 90 for half figure, and 180 for the given barley figure.

For applying the method of triangles, the area of the upper triangle is found by the old empirical rule.[15]

$$\triangle = \frac{(KP + PN)}{2} \cdot \left(\frac{KN}{2}\right) \qquad \text{..... (25)}$$

$$= \left(\frac{15+15}{2}\right) \cdot \left(\frac{12}{2}\right) = 90$$

which gives the same answer 180 for the full figure. Indeed ancient methods were peculiar.[16] If one can see, rules (23) and (25) are same in the context here!

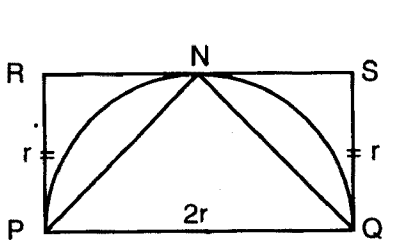

FIG. 5

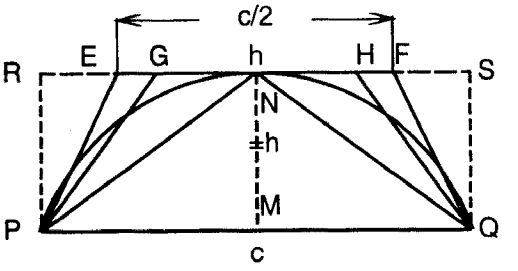

FIG. 6

Now we will give two rationales for the formula (19). One is based on averaging which was frequently used in ancient days.[17] It can be seen easily that the area of the semi-circle (with $\pi = 3$) in FIG. 5 is the mean of the areas of the inscribed triangle PNQ and the circumscribed rectangle PRSQ. It is quite natural to apply the same process to the segment PNQ in FIG. 6 by analogy. So we get

$$A = (\triangle \text{ PNQ} + \text{area PRSQ})/2 = (ch/2 + ch)/2$$

which gives (19). Second method is based on equating the area of the segment by apparently equivalent trapezium which was a pride figure in Jaina mathematics. In FIG. 6, GH = h, EF = c/2. Firstly, we note that the rule (13) approximates the area of the segment by the trapezium PGHQ. But this rule (13) always gives less area. So the segmental area may be approximated by the trapezium

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

PEFQ whose area is (c+c/2).h/2 which gives the formula (19). Finally by adjusting (19) to the better value $\pi = \sqrt{10}$, we get the Jaina rule (16) or (17).

References and Notes -

1. R.C. Gupta, *'Jaina Formulas for the Arc of a Circular Segment'*, **Jain Journal, 13**(3), (1979), 89-94.
2. **GSS,** edited by L.C. Jain, with Hindi translation, Sholapur, 1963. The chord is called *guṇa* ('cord' or 'string') here.
3. See the **Trilokasāra** with commentary of Mādhavacandra and Hindi translation of *Āryikā Viśuddhamati,* Mahāvīraji, 1975, p. 597.
4. The details are given by the present author in a paper submitted for a felicitation volume.
5. Sudhakara Dvivedi (editor), **Triśatikā of Śrīdhara,** Benares, 1899, p. 35.
6. A.Nahata and B. Nahata (editors), **Ratnaparīkṣādi Saptagrantha saṅgraha** (including **Gaṇita sāra**), Jodhpur, 1961, p. 56 in Part II.
7. See the **Tiloyapaṇṇatti,** edited with Hindi translation of *Āryikā Viśuddhamati,* Vol. II, 1986, p. 636. *Yativṛsabha* is placed between A.D. 473 and 609.
8. See the **Āryabhatīya with the Commentary of Bhāskara I** etc., ed. by K.S. Shukla, New Delhi, 1976, p. 73.
9. **Trilokasāra** (see ref. 3 above) *gāthā* 762, p. 597. *Visuddhamati's* translation is slightly wrong. **Daśakaraṇi** means $\sqrt{10}$ which she missed.
10. R.C. Gupta, *'On Some Rules from Jaina Mathematics'*, **Gaṇita Bhāratī,** 11 (1989), 18-26.
11. Gupta, *'Mahāvīrācārya on the Perimeter and Area of an Ellipse'*, **The Mathematics Education, 8**(1), 1974, Sec. B, 17-19 ; and T. Hayashi, *'Nārāyaṇa's Rule for a Segment of a Circle'*, **Gaṇita Bhāratī,** 12 (1990), 5-7.
12. See the **Apastamba Śulbasūtra,** ed. by D. Srinivasachar and N. Narasimhachar, Mysore, 1931, p. 124.
13. R.C. Gupta, *Mensuration of a Circular segment in Babylonian Mathematics.* **Gaṇita Bhāratī,** Vol. 23 (2001). It also contains a rationale of the rule (24).
14. Hayashi, *op.cit.* (see ref. 10 above), pp. 2-3.
15. The rule (25) for the triangle comes from the famous and universal 'surveyor's rule' for the area of a quadrilateral (of sides a, b, c, d) namely

$$\text{area} = \left(\frac{a+c}{2}\right) \cdot \left(\frac{b+d}{2}\right)$$

when the (top) fourth side d = 0 (for triangle). For details see R.C. Gupta's, *'Primitive Area of a Quadrilateral and Averaging'*, **Gaṇita Bhāratī,** 19 (1997), 52-59.
16. See original text etc. in the **Gaṇita Kaumudī,** ed. by Padmakara Dvivedi, Part II, Benares, 1942, p. 11 and some modern exposition in **Gaṇita Bhāratī,** Vol. 21 (1999), p. 15.
17. See R.C. Gupta, *'The Process of Averaging in Ancient and Medieval Math.'*, **Gaṇita Bhāratī,** 3 (1981), 32-42.

Received - 3.7.2001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाले शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 31 दिसम्बर 2001 तक पुस्तकालय में 9250 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं 1167 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ सम्मिलित हैं ही। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 350 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओंसे : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

31.12.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

Vol. 14, No. 1, 2002, 17-29

MATHEMATICS IN MAHĀVĪRA'S TRADITION

■ Dr. Anupam Jain *

अलङ्घ्यं त्रिजगत्सारं यस्यानन्त चतुष्टयम्।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय महावीरतायिने॥
संख्याज्ञान प्रदीपेन जैनेन्द्रेण महात्विषा।
प्रकाशितं जगत्सर्वं येन तं प्रणमाम्यहम्॥[1]

In the salutation of his famous Indian Mathematical text *Gaṇitasārasaṁgraha* (GSS) of 9th century great *Jainācārya Mahāvīra* (814-877 A.D.) says -

'I bow to Lord Mahāvīra who are unsurpassable in all the three world and accquired four infinite attributes. I bow to that highly glorious Lord Jina by whom as forming the shining lamp of the **knowledge of numbers,** the whole of the Universe has been made to shine.

In this *mangalācaraṇa Mahāvīrācārya* refers Lord Mahāvīra as an illuminator of knowledge of numbers.

Another great mathematician *Ācārya Śrīdhara* of 8th C.A.D. writes in the salutation *(mangalācaraṇa)* of *Triśatikā* that -

नत्वां जिनं स्वविरचित पाट्या गणितस्य सारमुद्धृत्य
लोकव्यवहाराय प्रवक्ष्यति श्रीधराचार्यः॥[2]

Śrīdharācārya bowing to God *Jina* tells the substance of Mathematics as extracted from the *Pāṭī* composed by himself for the use of people.

This indicates the purpose of compiling the completely mathematical texts by *Jainācāryas.* Of course it does not give complete picture, even then, it is important.

Mathematics in *Mahāvīra's* tradition presently known as Jaina School of Mathematics. Modern mathematical world was completely unaware with this school before the publication of GSS in 1912 with English translation by M. Rangācārya. The first information about GSS was given by Prof. David Eugen Smith in April 1908 in Fourth International Congress on Mathematics in Rome.[3] After this a detailed survey article under the title **'The Jaina School of Mathematics'** appeared in Bulletin of Calcutta Mathematical Society in 1929, by Prof. B.B.

Department of Mathematics, Holkar Autonomous Science College, Indore-452017.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Dutta[4]. The origin of this school goes to long back. Now, I am quoting some references from Jain *Purāṇas* which indicate that the first *Tīrthankara* Lord Ṛṣabhadeva himself taught Number System *(Aṁka Vidyā)* to his younger daughter Sundarī. We know that he taught script *(Lipi Vidyā)* to his elder daughter Brāhmī.

विभु: करद्वयैनाभ्यां लिखन्नक्षरमालिकाम्। उपादिशल्लिपिं संख्यास्थान चाङ्कैरनुक्रमात्॥ 104॥
ततो भगवतो वक्त्रान्नि:सृतामक्षारवलीम्। सिद्धं नम इति व्यक्तमङ्गलां सिद्धमातृकाम्॥ 105 11
अकारादिहकारान्तां शुद्धां मुक्तवलीमिव। स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विधा भेदमुपेयुषीम्॥ 106॥
अयोगवाहपर्यन्तां सर्वविद्यासु संततम्। संयोगाक्षरसंभूतिं नैकबीजाक्षरैश्चिताम्॥ 107॥
समवादीधरद् ब्राह्मी मेधाविन्यतिसुन्दरी। सुन्दरी गणितं स्थानक्रमै: सम्यगधारयत्॥ 108॥[5]

In *Purāṇa-sāra-Saṁgraha Ācārya Dāmanandi* writes that -

वाम हस्तेन सुन्दर्या गणितं चाप्यदर्शयत्॥[6]

One more reference of *Ādipurāṇa*, ch.-16, indicates the existence of mathematical operations during the period of Lord Ṛṣabhadeva.

प्रस्तार नष्टमुदिष्टमेकद्वित्रिलघु क्रियाम्।
संख्यामयाध्वयोगं च व्याजहार गिरापति:॥[7]

In the *Śvetambara* tradition of Jaina *Dharma* we also find many references. It is an established fact that at the time of Candragupta, about 300 B.C., during 12 year famine, *Śvetāmbara* sect came into picture. In the *Śvetāmbara* tradition, in connection of 72 arts, we find the quotation -

लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ

i.e.Script etc. but full of mathematics. In otherwords we can say that they accept that all the arts are full of mathematics. The technical word used for mathematics in *Śvetāmbara* tradition is *Saṁkhyāna* (संख्यान). In *Vyākhyaprajñā-pti (Bhagavatī Sūtra)*[8] knowledge of *Saṁkhyāna* is essential for all the Jaina Monks *(Sādhus)*. In the lane of twelve *aṁgas*, third one is *Sthānānga*, which is also known as *Thāṇaṁ* and preserved in the *Śvetāmbara* tradition. We find an important verse (No. 747) related to the topics of *Saṁkhyāna*.

दस विधे संखाणे पण्णत्ते तं जहा
परिकम्मं ववहारो रज्जु रासी कलासवन्ने य
जावंतावति वग्गो धनो ततह वग्गवग्गो विकप्पोत॥[9]

Types of *Saṁkhyāna are 10*, which are following -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	Term	Old Interpretation by Abhaidevasūri	New Interpretation
1.	*Parikarma*	Addition etc.	Fundamental Operations
2.	*Vyavahāra*	Series etc.	Applications of Fundamental Operations
3.	*Rajju*	Plane Geometry	Paraworldly Mathematics related to Simile Measure etc.
4.	Rāśī	Heap of Grains	Set Theory
5.	*Kalāsavarṇa*	Fractions	Mathematics of Fractions
6.	*Jāvata Tāvata*	Multiplication of Natural Numbers	Simple Equations
7.	*Varga*	Square	Quadratic Equations
8.	*Ghana*	Cube	Cubic Equations
9.	*Vargavarga*	Fourth Power	Higher Order Equations
10.	*Vikalpa*	Krakacikā Vyavahāra or Mathematics related to Cutting of Saw	Combinations and Permutations

Attempt to explain these ten types has been made by Abhaidevasūri, B.B. Dutta, H.R. Kapadia and L.C. Jain. But the explanations made by L.C. Jain are more closed to the reality. Here I want to mention that the mathematics found in the *Dhavalā* and *Gommaṭasāra* are comparatively more advanced, therefore Abhaidevasūri, B.B. Dutta, H.R. Kapadia could't imagine these advanced topics.

In many commentories of *Thāṇaṁ*, we find this verse with minor changes. The interpretation made by Abhaidevasūri is misleading. The same type of interpretation is given by *Ācārya* Tulsiji and his team in the edition of *Thāṇam*, published by Jaina Vishva Bhārati, Ladnun. As I have mentioned earlier that the Jaina School of Mathematics came into light only in the 20th C.A.D. and many aspects explored in the later half of 20th C.A.D. Due to this reason, B.B. Dutta and H.R. Kapadia cannot imagine the extent of Mathematical knowledge contained in *Dhavalā* and *Gommatasāra*. Due to it, they cannot interpretate the term properly. L.C. Jain, who has gone through the mathematics of *Tiloyapaṇṇatī*, *Dhavalā* and *Gommatasāra* interpretated well the different forms. This topic has been discussed in detail in my article.

'जैन आगमों में निहित गणितीय अध्ययन के विषय', तुलसी प्रज्ञा (लाडनूँ), **13**(1987),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

pp. 57-64.

Role of Mathematics in Jainism is very high. It can be observed in the following words of a famous Jaina commentator, Todarmal (1740-1767 A.D.) of Jaipur. He writes -

"बहुरि जे जीव संस्कृतादिक के ज्ञान सहित है किन्तु गणिताम्नायादिक के ज्ञान के अभाव ते मूल ग्रंथ या संस्कृत टीका विषै प्रवेश न करहुं तिन भव्य जीवन काजे इन ग्रंथन की रचना करी है।"[10]

For those people, who have the knowledge of Samskrita etc., but due to lake of knowledge of Mathematics they can't understand the original texts, these texts have been prepared. This indicate the utility of Mathematics in understanding Jaina philosophy.

Not only it but in 9th century a famous Jaina Mathematician, Ācārya Māhāvīra also writes that -

'बहुभिर्वि प्रलापै: किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्व गणितेन बिना नहि॥'[11]

What is good of saying much in vain? Whatever there is in all three worlds, which are prossessed of moving and non-moving being all that indeed cannot exists as apart from Mathematics.

These references are enough to show the place of Mathematics among Jainas. Jaina literature have a lot of Mathematics. It is vast and varied too. During past two decades I have tried to see and collect the information about it, but we can do only a small part of it. More than 100 mathematical manuscripts written by different Jaina scholars are still remains unexplored, unidentified and we are still unknown about the mathematical knowledge contained in it. Even then, available informations are very huge and attract attention.

More informations about Jain mathematical literature are available in the following two papers written by the author in Hindi -

1. कतिपय अज्ञात जैन गणित ग्रन्थ, गणित भारती (दिल्ली), 4(1-2), 1982, pp. 61-71
2. जैन गणितीय साहित्य, अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), सितम्बर 1988, pp. 19-40

Of course above two articles are very exhaustive, but here I would like to give some informations from these articles. We can classify all the available mathematical texts of Jaina School in the following 6 groups.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Group I - In this category, we include those mathematical texts, which are well known and its critical editions have been published.

1. *Gaṇitasāra Saṁgraha* of *Mahāvīrācārya* (850 A.D.)[12].
2. *Ganita Tilaka,* commentory on *Pātiganita* of Śrīpati, written by Simha Tilaka Sūri (1275 A.D.)[13].

Group II - In this category, we include only those texts whose original texts have been published but its critical edition has not been published so far.

1. *Triśatikā (Patīganitasāra)* of *Śrīdhara.*
2. *Ganita Sāra Kaumudī* of Thakkara Pheru (1265-1330).
3. *Angula Saptati.*
4. *Lilāvatī* of Poet Lālacandra.
5. *Aṁka Prastāra.*

Out of these *Triśatikā* is very important. Its *mangalācaraṇa* has been changed. Really *Śrīdhar* was earlier *Shaiva* hindu but later he became Jaina. At the time of copying, some one changed the *mangalācaraṇa.* Original *mangalācaraṇa* was -

नत्वा जिनं स्वविरचित पाट्या गणितस्यसारमुद्धृत्य[14]

and later 'जिनं' word was changed to 'शिवं'. But in the inner part we get an example related to *Tīrthankaras* in connection with the question related with fractions.

वृषभे सम्भवे पंच सप्तोन्दुरुत दीशये:।
विमले ऽर्द्धं चतुर्द्वार क्रमेंणैकं च दृश्यते॥[15]

This example contains the name of *Tīrthankara* Vṛaṣabha *(Ādināṭha),* Sambhavanātha and Vimalanātha and able to say the entire story.

I have discussed it in my another paper -
'आचार्य श्रीधर एवं उनका गणितीय अवदान', (Co-author Mamta Agrawal), Arhat Vacana (Indore), **8**(1), 1996, pp. 17-24.

Group III - In this group we include those texts whose manuscripts are lying with me but so far unpublished.

1. *Saṭtriṁśikā* by Mādhavacandra Traividya (11th C.A.D.)
2. *Gaṇitasāra* by Hemarāja (1673 A.D.)
3. *Istānkapancaviṁśatikā* by Tejsingh Sūri (1686)

Group IV - In this group we include the name of those texts which are

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

still preserved in different libraries of India. In the catalouges of different *bhandāras* we have the informations about these texts. They should be preserved immediately. This list includes -

1. *Gaṇita Sāthasau* - Mahimodaya
2. *Gaṇitasāra* - Ānanada Kavi
3. *Gaṇividyā Paṇṇatti*
4. *Gaṇita saṁgraha* - Yallācārya
5. *Kṣetra Gaṇita* - Nemicanda
6. *Kṣetra samāsa* - Somatilaka Sūri
7. *Kṣetra samāsa Prakaraṇa* - Śrīcandra Sūri
8. *Vṛahat Kṣetra samāsa Vṛatti* - Siddha Sūri
9. *Laghu Kṣetra samāsa Vṛatti* - Haribhadra Sūri
10. *Kṣetra samāsa* - Ratna śekhara Sūri
11. *Kṣetra Samāsa* - Simhatilak Sūri
12. *Uttara Chattīsī Tīkā* - Śrīdhara
13. *Gaṇita Śāstra* - Rajāditya
14. *Gaṇita Śāstra* - Guṇabhadra
15. *Gaṇita Vilāsa* - Candram
16. *Gaṇita Saṁgraha* - Rājāditya
17. *Gaṇita Vilāsa* - Rājāditya
18. *Gaṇita Koṣthaka* -
19. *Pudgala Bhanga Vṛatti* -

This list may be extended by making extensive survey.

Group V - In this group we list out those texts whose names are found in other texts but at present there is no information about the availability of these important texts. They should be searched.

1. *Vṛahada Dhārā Parikarma* (In *Trilokasāra*) [16]
2. *Siddhabhūpaddhati Tīkā* (In *Uttara purāṇa*) [17]
3. *Karaṇa Sūtra* (Yativṛaṣabha)
4. *Karaṇa Bhāvanā* (Anantapāla)
5. *Pātiganita* (Anantapāla)
6. *Chattisa Pūrva Prati Uttara Pratisaha* (Mahāvīrācārya)
7. *Kṣetra Gaṇita* (Mahāvīrācārya)
8. *Aloukika ganita* (Ratnaśekhara Sūri)
9. *Ganita Sūtra* (Ratnaśekhara Sūri)
10. *Triśati* (Ratnaśekhara Sūri)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. *Kṣetra Vicāraṇā* (Ratnaśekhara Sūri)
12. *Kṣetra Samāsa Balāvabodha*
13. *Lilāvatī Bhāṣā Caupai*

etc.

Group VI - There are so many old mathematical works which were composed in *Sourśenī Prākṛta* prose and poetry and in *Ardhamāgadhī*. The quotations of these works found in later works but the original texts are not available. The names of the texts containing such quotations are following -

1. *Tatvārthādhigama Sūtra Bhāṣya* of Umāsvati
2. Commentory of *Aryabhatīya* by Bhaskara - I
3. *Dhavalā Tīkā* by *Ācārya* Vîrasena
4. Commentory of *Anuyogadvāra Sūtra* by Śîlanka
5. *Lilāvatī* of Bhāskara - II

The well known method of solving quadratic equation given by Śrîdhara is available in Bhaskara's *Lilavati*.

चतुराहत वर्गसमै रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत्।
अव्यक्त वर्गरूपैर्युक्तो पक्षो ततो मूलम्॥

$$
\begin{aligned}
ax^2 + bx &= c \\
4a\,(ax^2) + 4a\,(bx) &= 4ac \\
4a^2x^2 + 4abx &= 4ac \\
4a^2x^2 + 4abx + b^2 &= 4ac + b^2 \\
(2ax + b)^2 &= 4ac + b^2 \\
2ax + b &= \pm\sqrt{4ac + b^2} \\
x &= \frac{-b \pm \sqrt{4ac + b^2}}{2a}
\end{aligned}
$$

It has been quoted from unavailable work *Bījagaṇita* of Śrîdhara.

More detailed informations are available in my article **'जैन गणितीय साहित्य'** in Hindi.[18]

Now I am giving the list of the Ācāryas/Scholars, who are related with Jaina School and whose works have the material of mathematician's interest. Unless we identify all the available manuscripts and search out the mathematical treatise mentioned by later mathematicians, we cann't claim about the completeness of it. Even then it gives brief idea.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

S. No.	Name	Period	Text of Mathematical Interest
1	Guṇadhara	1st c.B.C.	Kaṣāya Pāhuda
2	Kundakunda	1st c.B.C.- 1st c. A.D.	Pancāstikāya etc.
3	Dharasena	1st c.A.D.	Ṣatakhaṇḍāgama
4	Puṣpadanta and Bhūtabali	1st c.A.D.	Ṣatakhaṇḍāgama, Mahābandha
5	Umāsvāmī	2nd - 4th c.A.D.	Tatvārthasūtra
6	Umāsvāti*	2nd - 4th c.A.D.	Tatvārthādhigamasūtrabhāṣya
7	Yativṛaṣabha	176 - 609 A.D.	Tiloyapaṇṇattī
8	Pūjyapāda (Devanandi)	539 A.D.	Sarvārtha Siddhi
9	Jinabhadragaṇi Bhāṣyakāra*	609 A.D.	Viśeṣāvāśyaka Bhāṣya
10	Akalanka	620 - 680 A.D.	Tatvārtha Rājavārtikā
11	Vidyānanda	775 - 840 A.D.	Tatvārtha Ślokavārtikā
12	Śrīdharācārya	8th c.A.D.	Pāṭīganita, Triśatikā, Jyotirjñānavidhi, Bījaganita (not available) etc.
13	Vīrasena	816 A.D.	Dhavalā Commentory
14	Jinasena	9th c.A.D.	Jayadhavalā Commentory
15	Mahāvīra or Mahāvīrācārya	850 A.D.	Gaṇitasāra - saṁgraha etc.
16	Kumudendu	860 - 880 A.D.	Siribhūvalaya
17	Śīlānka*	9th c.A.D.	Ṭīkās of āgams
18	Nemicandra Siddhāntacakravartī	10 - 11th c.A.D.	Gommaṭasāra, Trilokasāra, Labdhisāra, Kṣapaṇasāra
19	Madhavācandra Traividya	10 - 11th c.A.D.	Sattrinśika, Ṭīkās of Ġommaṭasāra, Trilokasāra etc.
20	Padmanandi I	977 - 1043 A.D.	Jambūddīvapaṇṇatti saṁgaho
21	Amitagatī II	11th c.A.D.	Candraprajñapti, Sārdhadvaya

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

			prajñapti, Vyākhyā prajñapti
22	Abhaidevasūri*	1015-1078 A.D.	Tīkās of 9 āgamas
23	Hemacandrasūri*	1107 A.D.	Anuyogadvāra Vrtti, Viśeṣavāśyaka Bhāṣyavṛtti
24	Malayagiri*	1080-1172 A.D.	Tīkās of Sūrya prajñapti, Candra prajñapti, Jambūdvipa prajñapti etc.
25	Rājāditya	1120 A.D.	Vyavahāra Ganita, Ksetra Ganita, Vyavahāra Ratna, Jaina Ganita Sūtrodāharana, Citrahasuge, Līlāvatī
26	Simhatilakasūri*	13th c.A.D.	Ganita Tilaka Tīkā
27	Thakkara Pheru*	1265-1330 A.D.	Ganitasāra Kaumudī
28	Ratnaśekhara sūri*	1440 A.D.	Laghu Kṣetra Samāsa
29	Mahimodaya*	1665 A.D.	Ganita Sāthasau
30	Hemarāja	1673 A.D.	Ganitasāra
31	Tejasimha*	17th c.A.D.	Iṣṭānka Pancavinśatikā
32	Todaramala	1740-1767 A.D.	Samyakajñāna Candrikā Tīkā on Gommatasāra, Trilokasāra etc.

The names of the mathematicians whose works included in Group IV should also be added after getting the copies of the MSS from *bhandārs.* The above list of authors may be extended by adding the names Haribhadra Sūri, Padmaprabha Sūri, Candrama, Siddhasena, Mahendra Sūri, Malayendu Sūri, Bulākīcandra, Bulākīdāsa etc. The books wriiten by these authors include some material of mathematician's interest. Of course, it is true that these authors neither composed any mathematical texts nor any such book which have special mention from mathematical point of view.

Apart from it in Jaina Canonical Text of *Śvetāmbara* tradition, which is known as *Amga* & *Upāmga*, we find enough interesting material. These *amgas* contains valuable informations regarding Number System, Theory of Infinity, Theory of Indices, Combination etc. *Sthānānga sūtra, Bhagavatī sūtra, Anuyogadvāra sūtra, Uttarādhyayana sūtra, Jambūdvīpa prajñapti* are more important from this point of view. All these references are collectively available in *Ganitānuyoga* compiled by Muni Kanhaiyalal Kamal[19].

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In the list given here the scholars having * belongs to *Śvetāmbara* tradition, while others are *Digambara*. This information is useful in compiling the life history of the *Ācārya*. I would like to mention that Śrīdhara, Mahāvīra, Simhatilakasūri & Thakkarpheru are purely mathematician, while Yativṛasabha, Vīrasena, Nemicandra & Toḍarmala, who are basically philosophers, contributed a lot. A deep study of the works of these philosopher mathematician is urgently needed. I am happy to note that Prof. Padmavathamma, Mr. Dipak Jadhav, Mrs. N. Shivkumar, Mrs. Shweta Jain, Mr. Jeevanprakash Jain & Mrs. Pragati Jain are busy in doing such studies.

Now I am mentioning few points which were earlier discovered by Jainācāryas but still in the existing books on History of Mathematics we find wrong informations.

1. Fibonnaci Numbers & Fibonnacci Sequences are first found in the *Gaṇita sāra-saṁgraha* of *Mahāvīrācārya* (850 A.D.)[20]. It is discussed in detail in GSS of 9th c.A.D. Process of finding perpendiculars & base for fixed C is available in GSS, but credit is given to Fibonnacci (1202 A.D.) and Vieta (1580 A.D.).[21] It is also clear by the name also. Actually credit should be given to Mahaviracarya (850 A.D.)
2. The General formula for combination ${}^{n}C_{r} = \frac{n!}{r!(n-r)!}$ is available in GSS by Mahāvīra (850 A.D.)[22], but credit is given to Herigon (1634 A.D.).[23] The theory of combination & permutation is available in many Jaina texts by the name *Vikalpa* or *Bhaṁga*.
3. The general formula for Permutation is ${}^{n}P_{r} = \frac{n!}{(n-r)!}$ is given in the commentary of Anuyogadvāra sūtra by Hemcandra[24], while it is mentioned in the book of Smith that it is invented in Europe in 14-15th century.[25]
4. The concept and formula for logarithms is available in the Tiloyapaṇṇatti[26] (2-7 th century) and in the Dhavalā commentary of Ṣaṭakhaṇḍāgama written by Vīrasena (816 A.D.).[27] The formulae which are available -

$$\log m.n = \log m + \log n.$$
$$\log m/n = \log m - \log n$$
$$\log m^{n} = n \log m.$$

Not only this, but the concept of log log and log log log is also available in the Dhavalā commentory. More details are available in the article of Prof. L. C. Jain 'On Some Mathematical Topics of Dhavalā' text[28]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

or in the book 'Exact Sciences from Jaina Sources, Vol. - 1, Basic Mathematics'.[29] But credit for the invention of logarithm is given to John Napier (1550 - 1617) and Jobit Burgi (1552 - 1632) which is not proper.[30] Of course it is true that in Dhavalā all the rules are discussed with base 2,3,4, but in the modern mathematics base is '10' and 'e' are more popular. The concept of anti*ardhaccheda* and anti*vargaśalaka* is also available in the commentories written by Mādhvacandra Traividya.

5. In the same Dhavalā. there exists concepts and illustrations of set theory. In fact, the word *'rāsi'* is used for sets. Other synonomical words are *Ogha, Punja, Sampāta, Bhavya Jiva Rāśī, Mithyā dristi Jiva Rāsi, Vanaspati Kāyika Jiva Rāsi,* all are well defined hence they are sets. The concept of finite & infiniite set, singlton set, null set, sub set, super set, etc. are available in Dhavalā[31] in detail but the credit for invention and development of set theory goes to George Cantor (17th c.A.D.).[32] Of course it may be true that concept of set was developed by Cantor independently but on this ground we can not neglect the contributions of Vīrasena.

6. The continued fractions are available in Dhavalā, Vol. - 3, in 9th century,[33] while credit goes to Antonio Catoldi (1540 - 1620 A.D.).[34]

7. Concept of Probability is available in the Apta mimānsa commentory written by Samantabhadra (2nd c.A.D.),[35] while credit goes to Galileo (1564 - 1642), Fermat (1601 - 1625), Pascal (1623 - 1662), Bernouli (1654 - 1705).[36] It is available in the name of Avaktavya (अवक्तव्य) , which is primary form of Probability. Of course it is in crude form.

8. Famous book Ganita Sāra Samgraha of Mahāvīrācārya contains the rule adding fractions of unequal denominator by the name niruddha[37]. He says -

छेदापर्वतकानां लब्धानां चाहतौ निरूद्ध स्यात्।
हरहृत निरूद्ध गुणिते गुणिते हारांशगुणे समोहार: ॥ 3/56

This rule was invented in Europe in 15th C.A.D. and came in use about 17th C.A.D.[38]

9. The use of unit fraction is an unique contribution of Mahāvīrācārya. No other Indian Mathematician discusses it[39]. Seven f different type of cases are available in GSS, ch - 3, verse 75 - 85[40].

10. The rule for finding the area & circumference of ellipse is available in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

GSS -7/21 & 7/63. The name of ellipse is here 'आयतवृत्त' In the Triśatika of Śridhara, it is discussed under the name Yavākāra. Both are not available in any contemporary or prior book[41].

Finally I would like to suggest to write a complete book on Jaina School of Mathematics which may include all the references of Jaina Contributions. Certainly, it is a major project which can be completed by a team of Mathematicians, expert of Jainism and language expert. The proper evaluation of karṇānuyoga and Drvyānuyoga should be done by mathematical point of view.

I am sure that this august gathering of this seminar which includes experts and dedicated social workers must think over it and take necessary decision in near future.

References -

1. *Gaṇitasāra Saṁgraha (GSS), Ācārya* Mahāvīra, English Translation by M. Rangacarya, Madras, 1912, Hindi Translation by L. C. Jain, Solapur, 1963, Kannada Translation by Padmavathamma with English Translation of M. Rangācārya, Hombuj, 2000, ch.-1, verse-1,2.
2. *Triśatika* - Manuscript , Lucknow University, verse-1.
3. Preface of the GSS (Kannada Translation).
4. B.B. Dutta, The Jaina School of Mathematics, B.C.M.S. (Calcutta), **21** (1929), pp. 115-143.
5. *Ādipurāṇa, Ācārya* Jinasena, vol.-1, ch.-16, verse 104-108, pp. 355-356.
6. *Purāṇasāra Saṁgraha, Ācārya Dāmanandi*, 3/14.
7. *Ādipurāṇa*, vol.-1, ch.-16, verse-114, pp. 356.
8. *Bhagavatī Sūtra, 90*
9. *Thāṇaṁ*, ch. 10, verse-747.
10. *Gommatasāra (Jīvakāṇḍa)*, Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, with commentory of Toḍarmal, Jaina Siddhānta Prakāśinī Saṁsthā, Kolkata, Pūrva Pīthikā, p. 58.
11. Gaṇitasāra saṁgraha, Ācārya Mahāvīra (850 A.D.), ch.-1, *śloka-16, (1/16).*
12. *See Ref : 1*
13. *Gaṇita Tilaka, Gaikwada Oriental Series, Baroda, 1935.*
14. *Changed mangalācaraṇa is*
    नत्वा शिवं स्वविरचित पाट्या गणितस्य सारमुद्धृत्य।
    लोक व्यवहाराय प्रवक्ष्यति श्रीधराचार्यः॥
    here 'जिनं' has been replaced by 'शिवं'.
15. Mamta Agrawal, 'आचार्य श्रीधर एवं उनका गणितीय अवदान' Ph.D. Thesis, Ch. Charanasingh University, Meerut, 2001, p. 169.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16. ववहारू वजोग्गाणं धाराणं दरिसिदं दिसामेत्तं।
वित्थरदो वित्थरू सिरूसा जाणंतु परियक्मे। Trilokasāra Gāthā, 91.

17. सिद्ध भूपद्धतिं यस्य टीकां संवीक्ष्य भिक्षुभिः।
टीक्यते हेलयान्येषां विषमापि पदे - पदे॥ Uttarapurāṇa Praśasti.

18. For details of such references, see अनुपम जैन, जैन गणितीय साहित्य, Arhat Vacana (Indore), **1** (1), 1988.

19. Gaṇitānuyoga, Muni Kanhaiyalal Kamal, Agam Anuyoga Prakāshan Samiti, Sanderao, 1970.

20. GSS,ch. - 7, verse 95, 97 & $122\frac{1}{2}$.

21. L.E. Dickson, History of Theory of Numbers, Vol - II, Washington, 1923, p. 167.

22. GSS, 6/218, p. 246.

23. D.E. Smith, History of Mathematics, Dower Publication, New York, Vol - 2, p. 527.

24. Commentory of Anuyogadvāra sūtra by Hemchandra.

25. Smith, History, Vol - 2, p. 524 - 528.

26. Tiloyapaṇṇattī, Yativṛaṣabha, Hindi commentory by Āryikā Visuddhamatī, 3 Vols, Dig. Jaina Mahāsabhā, Kota, 1984 - 89.

27. Ṣatakhaṇḍāgama with Dhavalā Commentary, Vol 1 - 16, 1st Ed., Amravati, Vidarbha, 1939.

28. L.C. Jain, On Some Mathematical Topics of Dhavalā Texts, I.J.H.S. (Calcutta), **11**(2), pp. 85 - 111, 1976.

29. L.C. Jain, Exact Sciences from Jaina Sources, Vol I & II, Rājasthāna Prākrita Bhārtī, Jaipur, 1982 - 83.

30. Smith, History, Vol. II, p. 514 - 523 & B. Mohan, गणित का इतिहास, p. 220.

31. L.C. Jain, Set Theory in Jaina School of Mathematics, I.J.H.S. (Calcutta), **8**(1), pp. 1 - 27, 1973.

32. B. Mohan, गणित का इतिहास, p. 438 - 442.

33. Dhavalā, Vol 3, pp. 45 - 46.

34. Smith, History, Vol II, p. 419.

35. Āpta Mimānsā by Samantabhadra, Ch. - 7, verse 15, 16.

36. Ramesh Chand Jain, स्याद्वाद के सप्त भंग एवं आधुनिक गणित विज्ञान, Proceeding of International Seminar on Jaina Mathematics & Astronomy, D.J.I.C.R. (Hastinapur), 1985, 95 - 99.

37. Gaṇita Sāra Saṁgraha of Mahāvīrācārya, 3/56, p. 49.

38. B. L. Upadhyaya, प्राचीन भारतीय गणित, p. 169.

39. B. Mohan, गणित का इतिहास, p. 81.

40. Gaṇita Sāra Saṁgraha, ch. - 3, verse 75 - 84.

41. See Ref. 15

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन पुरस्कार वर्ष 13 (2001) की घोषणा

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं शोधपूर्ण आलेखों के सृजन को प्रोत्साहन देने एवं शोधार्थियों के श्रम को सम्मानित करने के उद्देश्य से वर्ष 1990 में अर्हत् वचन पुरस्कारों की स्थापना की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित 3 श्रेष्ठ आलेखों को पुरस्कृत किया जाता है।

वर्ष 2001 के चार अंकों में प्रकाशित आलेखों के मूल्यांकन के लिये एक त्रिसदस्यीय निर्णायक मण्डल का निम्नवत् गठन किया गया था -

1. **प्रो. ए. ए. अब्बासी**
   पूर्व कुलपति - देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर
   बी - 417, सुदामा नगर, इन्दौर - 452 009
2. **प्रो. गणेश कावड़िया** प्राध्यापक - अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, दे.अ.वि.वि,
   ए - 3, विश्वविद्यालय आवासीय परिसर,
   खण्डवा रोड़, इन्दौर - 452 017
3. **श्री सूरजमल बोबरा**
   सदस्य - संपादक मंडल, अर्हत् वचन,
   9/2, स्नेहलतागंज (श्रम शिविर के पीछे), इन्दौर

निर्णायकों द्वारा प्रदत्त प्राप्तांकों के आधार पर निम्नांकित आलेखों को क्रमश; प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार हेतु चुना गया है। ज्ञातव्य है कि पूज्य मुनिराजों, आर्यिका माताओं, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्यों एवं विगत पाँच वर्षों में इस पुरस्कार से सम्मानित लेखकों द्वारा लिखित लेख प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमश: रुपये 5000/-, 3000/- एवं 2000/- की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार : Solar System in Jainism and Modern Astronomy, **13**(1), January 2001.
Dr. Rajmal Jain,
45, Adarsh Colony Pulla, P.B. 24, **Udaipur** (Raj.)

द्वितीय पुरस्कार : Jainism Abroad, **13**(1), January 2001.
Sri Satish Kumar Jain, Secretary General - Ahimsa International, C - III/3129, Vasant Kunj, **New Delhi.**

तृतीय पुरस्कार : जैन धर्म में आस्रव तत्त्व का स्वरूप, **13** (3 - 4), जुलाई - दिसम्बर 2001.
डॉ. मुकुलराज मेहता, रिसर्च साइंटिस्ट, 'सी' दर्शन एवं धर्म विभाग काशी हिन्दू वि.वि., **वाराणसी** (उ.प्र.)

निकट भविष्य में पुरस्कार समर्पण कार्यक्रम आयोजित किया जायेगा।

देवकुमारसिंह कासलीवाल — अध्यक्ष
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
डॉ. अनुपम जैन — मानद सचिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

Vol. 14, No. 1, 2002, 31-54

THE MENSURATION OF A CONCH IN ANCIENT INDIA

■ Dipak Jadhav * & Padmavathamma**

1. INTRODUCTION

According to Jaina cosmography, at the end of *asaṁkhyāta*[1] island-oceans here is the *Svayambhūramaṇa* (self-born-merriment) ocean in which the deeply sunk one is a conch. The dimension (extension, length or diameter) of the conch is 12 *yojanas* and the diameter of its (circular) face is 4 *yojanas*. Jainas have calculated that the volume of the conch is 365 cubic *yojanas*.

As far as known, from before the time of *Yativṛṣabha*[2] the Jaina School of Indian Mathematics has had a deep concern with the mensuration of a conch. *Vīrasena*[3], *Mahāvīra*[4], *Nemicandra*[5] and *Nārāyaṇa*[6] are the other mathematicians whose works contain the elements of its mensuration. Among them, *Nārāyaṇa* is the only non-Jaina mathematician.

The very object of this article is to make a thorough study on the mensuration of a conch in ancient India from those sources which are extant today. This article shall definitely provide broad base for further study.

In the following sections, we shall give the details of the mensuration of a conch made by the mathematicians mentioned above in such an order that the subject matter can be well understood.

For chronological, schoolwise and classwise order, vide Table-A.

2. MAHĀVĪRA

In footnotes (p. 186, Rangacharya) to his own English translation of the *Gaṇita-sāra-saṁgraha*, *Rangacharya* (1912) conceives that the figure intended by *Mahāvīra* for a conch-like plane figure is two unequal semi-circles placed so that their diameters coincide in position as shown in Fig. 1a.

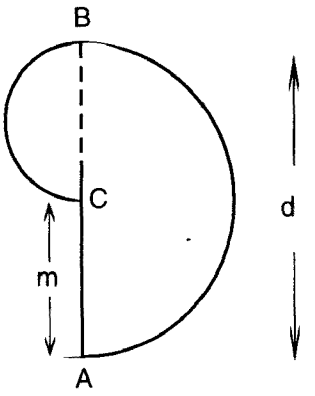

Fig. 1a : A conch-like plane figure conceived by Rangacharya

* Lecturer in Mathematics, J.N. Govt. Model H.S. (Residential) School, Barwani-451551 (M.P.) India.

** Professor of Mathematics, Department of Studies in Mathematics, University of Mysore, Mysore-570006, India.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

On the basis of the Fig. 1a, Hayashi[7] has developed a Fig. 1b -

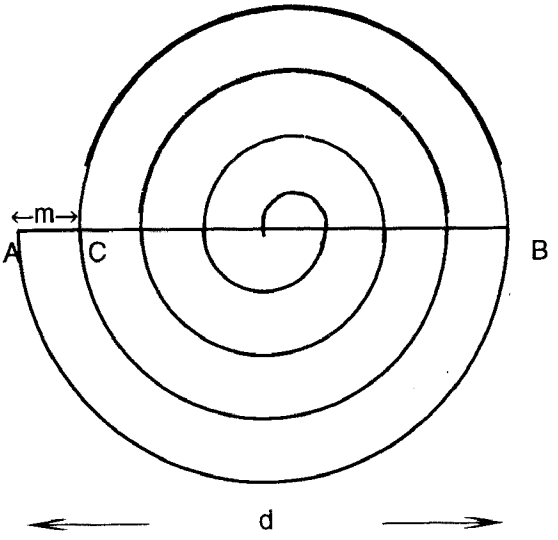

Fig. 1b : A conch-like plane figure developed by Hayashi

Let the diameters of the two semi circles, AB and BC, be 'd' and (d-m) respectively, then the sum of their circumferences (except for the diameters AB and BC) and that of their areas are the perimeter 'P' and area 'A' of the conch-like plane figure (cf. Fig. 1a and 1b).

$$P = \frac{\pi}{2}d + \frac{\pi}{2}(d-m) \qquad [1a]$$

$$A = \frac{\pi}{2}\left(\frac{d}{2}\right)^2 + \frac{\pi}{2}\left(\frac{d-m}{2}\right)^2 \qquad [2a]$$

Mahāvīra gives two types of formulae for the perimeter and area of a conch-like plane figure, one for gross *(sthūla)* or practical *(vyāvahārika)* results and the other for subtle *(sūkṣma)* ones.

For gross results :

वदनार्धोनो व्यासस्त्रिगुण: परिधिस्तु कम्बुकावृत्ते।
वलयार्धकृतित्र्यंशो मुखार्धवर्गत्रिपादयुत: ॥

(GSS v. 7.23, p. 437)

In the case of a conch-circle *(kambukāvṛtta)*, the diameter *(vyāsa)* 'd' diminished by half the face *(vadana)* 'm' and then multiplied by three gives the perimeter *(paridhi)* 'P'. One-third of the square of half (this) perimeter *(valaya)*[8], added by three-fourth of the square of half the face (mukha), (gives the area 'A').

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$P = 3\left(d - \frac{m}{2}\right) \qquad [1b]$$

$$A = \frac{1}{3}\left(\frac{P}{2}\right)^2 + \frac{3}{4}\left(\frac{m}{2}\right)^2 \qquad [2b]$$

For subtle results :

वदनार्धोनो व्यासो दशपदगुणितो भवेत्परिक्षेपः।
मुखदलरहितव्यासार्धवर्ग मुखचरणकृतियोगः॥
दशपदगुणितः क्षेत्रे कम्बुनिभे सूक्ष्मफलमेतत्॥

(GSS vv. 7.65-65.5, p. 463)

The diameter *(vyāsa)* diminished by half the face *(vadana)* 'm' and (then) multiplied by the square-root of 10, becomes the perimeter *(parikṣepa)* 'P'. The square of half the diameter 'd' as diminished by half the face *(mukha)* 'm' and the square of quarter *(caraṇa)* of the face 'm' are added (together). The (resulting) sum is multiplied by the square-root of 10. This (result) gives rise to the subtle *(sūkṣma)* (measure) of the area in the case of the conchiform (plane) figure *(kambunibhakṣetra)*.

$$P = \sqrt{10}\left(d - \frac{m}{2}\right) \qquad [1c]$$

$$A = \sqrt{10}\left[\left(\frac{1}{2}\left(d - \frac{m}{2}\right)\right)^2 + \left(\frac{m}{4}\right)^2\right] \qquad [2c]$$

It is, according to Hayashi[9], unlikely that the formula [2a] was obtained first, and then transformed into the ones [2b] and [2c] although he has shown that the formulae [1b] and [2b] with 3 for π and ones [1c] and [2c] with $\sqrt{10}$ for π are modifications of the one [1a] and [2a] respectively.[10]

3. *NĀRĀYAṆA*

In his text, *Gaṇita-kaumudi*, *Nārāyaṇa* gives the following formulae for a conch-like plane figure.

मुखदलरहितो व्यासस् त्रिघनः शंखे प्रजायते परिधिः।
व्यासदलकृति वृत्यर्कांशहतास्योनिता फलम् त्रिघना॥

वदनदलोनो व्यासो वदनदलं यत तदर्धवर्गैक्यम्।
त्रिगुणितम् अथ वा गणितम् स्थूलं शंखाकृती भवति॥

(GK, kṣetra, vv. 10-1, pp. 6-7)

The diameter *(vyāsa)* 'd' diminished by half the face *(mukha)* 'm' and (then) multiplied three, becomes the perimeter *(paridhi)* 'P' of a conch (-like plane figure *(śaṁkha)*. The square of half the diameter 'd' diminished

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

by the product of the face 'm' and one-twelfth of the perimeter 'P' and (then) multiplied by three, is the area *(phala)* 'A'.

The diameter 'd' is diminished by half the face *(vadana)* 'm'. The face 'm' is halved. The (sum of the) squares of their halves multiplied by three is the gross *(sthūla)* area of a conchiform (plane) figure *(śaṁkhākṛti)*.

$$P = 3 \left(d - \frac{m}{2}\right) \qquad [1d]$$

$$A = 3 \left[\left(\frac{d}{2}\right)^2 - \frac{mP}{12}\right] \qquad [2d]$$

$$A = 3 \left[\left(\frac{d - m/2}{2}\right)^2 + \left(\frac{m/2}{2}\right)^2\right] \qquad [2e]$$

In the published text (part : 2, p. 7) of the GK, a figure (Fig. 2) is given for the example (GK, kṣetra, Ex. 6) in which d = 24 and m = 8 [Answer P = 60 and A = 312].

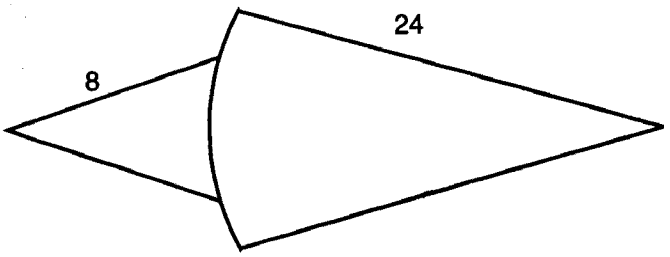

Fig. 2 : A conchiform (plane) figure given in the published text of the GK.

The figure (Fig. 2), according to Hayashi[11], appears to represent a side view of the conch, but it is difficult to relate the above formulae [1d], [2d] and [2e] to this one.

We think that one may make effort to relate this figure (Fig. 2) to the Fig. 6.

Hayashi[12] gives a hypothesis that *Mahāvīra* and *Nārāyaṇa* most probably obtained all the above formulae not from the two semi-circles, AB and BC (cf. Fig. 1a and 1b), but from the circle C_1 and half the lune (B_1 + B_2) or from the circle C_2 and half the lunes, B_1 and B_2 (cf. Fig. 3).

Let us consider three circles, C_1, C_2 and C_3, whose diameters are d, (d-d/2) and (d-a) and which, nested successively, touch each other at a single

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

point (B) (cf. Fig. 3).

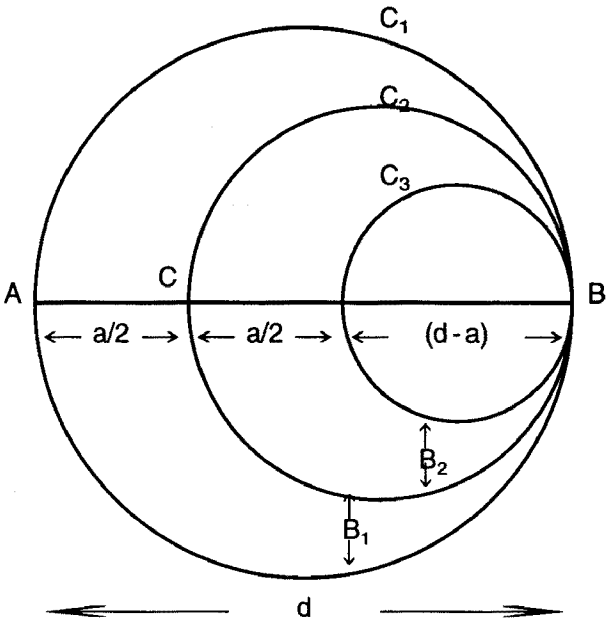

Fig. 3 : A conch-like plane figure proposed by Hayashi.

Then, the perimeter of the conch-like plane figure (Fig. 3) (except for the straight line AC) could be approximated by that of the circle C_2 :

$$P \simeq \pi \left(d - \frac{a}{2}\right) \qquad [1e]$$

The area of the same could be approximated by -

$$A \simeq A_1 - \frac{(B_1 + B_2)}{2} \qquad [2f]$$

where A_1 is the area of the circle C_1 and $(B_1 + B_2)$ is the area of the lune made by C_1 & C_3; or by -

$$A \simeq A_2 + \frac{(B_1 - B_2)}{2} \qquad [2g]$$

where A_2 is the area of the circle C_2 and B_1 and B_2 are those of the lunes made by C_1 and C_2 and C_2 and C_3 respectively.

Mahāvīra gives a rule for finding the area of a lune -

नेमेर्भुजयुत्यर्धं व्यासगुणं तत्फलार्धमिह बालेन्दो: ॥

(GSS v 7.7 second half, p.430)

The area of a rim *(nemī)* is half the sum of the sides *(bhujas)* multiplied

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

by the breadth *(vyāsa)*[13]. Here the area of a lune (*bālendu* = cresent moon or young moon) is half of that area.

$$B_1 = \frac{1}{2} \cdot \frac{a}{2} \cdot \frac{(p_1 + p_2)}{2}$$

$$B_2 = \frac{1}{2} \cdot \frac{a}{2} \cdot \frac{(p_2 + p_3)}{2}$$

where p_1, p_2 & p_3 are the circumferences of the circles C_1, C_2 and C_3 respectively.

4. *YATIVṚṢABHA*

In his Prakrit work titled *Tioloyapaṇṇatti*, *Yativṛṣabha* quotes the following rule, in Sanskrit, for finding the area (A) of a (plane) conch.

व्यासं तावत् कृत्वा, वदन – दलोनं मुखार्धवर्ग – युतम्।
द्विगुणं चदुर्विभक्तं, सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः॥

(TP, v. 321, p. 208)

The diameter *(vyāsa)* 'd', multiplied by itself, diminished by half the face *(vadana)*, added by the square of half the face *(mukha)* 'm', multiplied by two *(dvi)*, and divided by four, is, they say, the mathematics of this (figure) having a focus *(nābhi)*.

$$A = \frac{2\left[d^2 - \left(\frac{m}{2}\right) + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right]}{4} \qquad [2h]$$

In the JSOIM[14], A = 73 square *yojanas* is calculated when d = 12 *yojanas* and m = 4 *yojanas* (cf. also Table B).

L. C. Jain[15] [1958] obtained the above result through the following way.

$$A = \frac{\pi (\text{radius})^2}{2} + 48$$

= 73.28 square *yojanas*.

This may imply that

$$A = \frac{\pi \left(\frac{d-m}{2}\right)^2}{2} + d.m. \qquad [2i]$$

This may be a possible reason behind his proposal of a figure (Fig. 4) to the conch-like plane one although he categorically stated that the figure by *Yativṛṣabha* might be different.[16]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

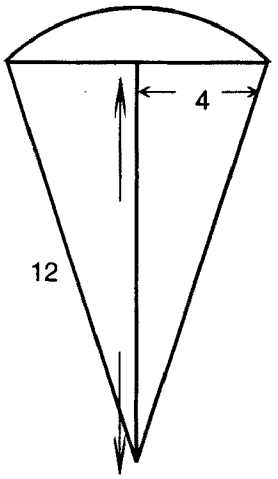

Fig. 4 : A conch-like plane figure proposed by L. C. Jain (1958)

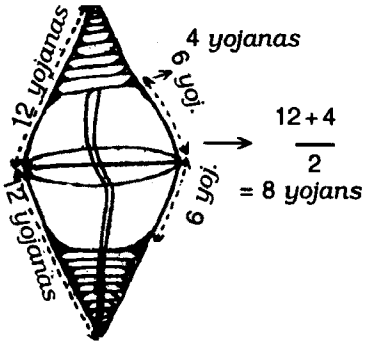

Fig. 5 : A conch designed and its figure labelled by L. C. Jain [1988]

But it is very difficult to relate the Fig. 4 and formula [2i] to the formula [2h]. Therefore, after three decades, he [1988] again designed another figure[17] [Fig. 5] for a conch on the basis of the exposition by *Āryikā Viśuddhamati* to *Mādhavācandra's* rationale.

Yativṛṣabha further gives a rule, in Prakrit, for calculating the thickness *(bāhalya)* 'v' of a conch.

आयामें मुह – सोहिय पुणरवि आयाम – सहिद – मुह – भजियं।
बाहल्लं णायव्वं, संखायारट्ठिए खेत्ते॥

(TP, v. 322, p. 208)

The dimension *(āyāma)* 'd' diminished by the face *(mukha)* 'm' is added by the dimension 'd'. (This result) divided by the face 'm' gives (the value of) the thickness *(bāhalya)* of the conchiform figure *(śaṁkhākṛti kṣetra).*

$$v = \frac{(d-m) + d}{m} \qquad [3a]$$

5. *VĪRASENA*

In his Prakrit commentary titled *Dhavalā*, on the *Ṣaṭkhaṇḍāgama* of *Puṣpadanta* and *Bhūtabalī* (1-2 nd century A.D.), *Virasena* too cites a rule, in Sanskrit, for finding the area of a conch (- like plane figure).

व्यासं तावकृत्वा वदनलोनं मुखार्धवर्गयुतम्।
द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः॥

(DVL, v. 13, p. 35)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This is one and the same as the verse 321 (p. 208) of the TP and hence finds the formula [2h].

He further states, in Prakrit, as follows :

एदेन सुत्तेण आणिय मुहहिणुस्सेहसहिदुस्सेहच्च दुभागेण गुणिय उस्सेह घणजोयणाणि .....

(DVL, v.1.3.2, p. 35)

By means of this versified rule *(sūtra)* (DVL, v.13, p. 35) (when one has calculated the area 'A', (the result A) is multiplied by the height *(utsedha)* 'u' diminished by the face *(mukha)* 'm' and added by the height 'u' and then divided by four gives (the volume 'V' in) cubic *utsedha yojanas*

$$V = \frac{2\left[d^2 - \left(\frac{m}{2}\right) + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right]}{4} \cdot \frac{(u - m + u)}{4} \qquad [4a]$$

If we write the above formula as

$$V = A.v, \qquad [4b]$$

then

$$v = \frac{u - m + u}{4}. \qquad [3b]$$

To calculate the values of 'A' & 'V', the JSOIM furnishes only 'd' and 'm'. Therefore, what *Virasena* means by the term 'height *(utsedha)*' 'u' is not clear. The formula [3b] is equal to the one [3a] only when u = d and 4 = m. Thus we may say that he means by u is d (cf. Table B).

According to Hayashi[18], the formula [2h] inferred from the verse 13 (p. 35) of the DVL has some inconsistency in its dimension. He[19], therefore, suggests the two emendations for that verse as follows :

[a] Without violating its meter, one can interchange the two compounds **तावकृत्वा** (multiplied by itself) and **वदन दलोनं** (diminished by half the face).

[b] The word "**द्वि** (two)" should be replaced with the one "**त्रि** (three)".

In this way, the formula [2h] will become equivalent to *Mahāvīra* and *Nārāyaṇa's* ones [2c and 2e] employing 3 for π.

6. *NEMICANDRA*

In his Prakrit work titled *Trilokasāra, Nemicandra* gives the following rule, in Prakrit, for finding the volume 'V' of a conch.

आयामकदी मुहदलहीणा मुहवास अद्धवग्गजुदा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिगुणा वेहेण हदा संखावत्तस्स रवेत्तफलं॥

(TLS, v.327, p. 271)

The square *(kṛti)* of the dimension *(āyāma)* 'd' is subtracted by half the face *(mukha)* 'm' and added by the square *(varga)* of half the diameter *(vyāsa)* 'm' of the face. The double (of this result) multiplied by the thickness *(vedha)* 'v' yields the volume 'v' of a conch *(śaṁkhāvṛtta kṣetraphala)*.

$$V = 2\left[d^2 - \left(\frac{m}{2}\right) + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right]v \qquad [4c]$$

If we compare this formula with the one [4b], we have

$$A = 2\left[d^2 - \left(\frac{m}{2}\right) + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right] \qquad [2j]$$

This formula seems far removed from the one [2h] but is not incorrect. This will be confirmed in coming pages (cf. also Table B).

7. MĀDHAVACANDRA'S RATIONALE

Mādhavacandra Traividya claims to be an immediate pupil of *Nemicandra*. He has written a commentary, in Sanskrit, on the TLS. In it, he gives his rationale to the verse 327 (p.271) of the TLS under the same as follows :

आयाम। एतावदुदय (12) मुखव्यासे (4) शंखे एतावन्मात्रे ऋणे विक्षिप्ते संपूर्णमुरजाकारो भवति। मुखायामसमासार्ध $\left(\frac{4+12}{2}\right)$ मध्यफलंमिति कृते एवं भवति। खण्डद्वये कृते एवं। अत्रैकरवण्डस्य क्षेत्रफलमानीयते। खण्डितत्वाहिदमर्धमृणं भवति। ''विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदी'' इत्यनेन एकखण्डस्य मुख (4) भूम्यो (8) वंर्गमूलमग्रे क्षेत्रखण्डनानुगुणेन गृहीत्वा $\left(12\frac{16}{24}/\ 24\frac{64}{48}\right)$ मुखमूलशेषे $\left(\frac{16}{24}\right)$ अष्टभिरपवर्तिते $\left(\frac{2}{3}\right)$ भूमिमूलशेषे $\left(\frac{64}{48}\right)$ षोडशभिरपवर्तिते $\left(\frac{4}{3}\right)$ तयोः सूक्ष्मपरिधी स्यातां। इदं क्षेत्रबाहुल्यं (8) मध्य (4) पर्यंतं खण्डयित्वा प्रसारिते परिधिप्रमाणेन तिष्ठति। तत् क्षेत्रं पुनः मुख (0) भूमि (4) समासार्धं मध्यफलमिति वेधरूपमध्यफलं साधयित्वा तत्रत्योभयपार्श्वस्थितक्षेत्रं गृहीत्वा चतुरस्त्ररूपेण संधिते एवं। तत्र खातपूरणार्थं कोणद्वयस्थितयोरैकैकरूपं गृहीत्वा शून्यस्थाने निक्षिप्तेऽपि संपूर्ण न भवतीति एतावति ऋणे निक्षिप्ते सम्पूर्ण भवति। पार्श्वद्वयवर्तित्रिकोणक्षेत्ररहित शेषचतुरस्त्रक्षेत्रं एकस्योपरि एकस्मिन् विपर्यासरूपेण निक्षिप्ते एवं। तस्योपरि पूर्वमानीते क्षेत्रे निक्षिप्ते एवं। तस्योपरि पूर्वमानीते क्षेत्रे निक्षिप्ते एवं। अत्रत्यतृतीयांशं पृथक् स्थापयित्वा त्रिधा खण्डिते सत्येवं। अस्मिन् खण्डत्रये एकभुजरूपेण सन्धिते सत्येवं। तदपि तिर्यग्रूपेण दलयित्वा पार्श्वे संस्थाप्त संधिते एवं। ते पुनरपि तिर्यग्रूपेण दलयित्वा पृथक् स्थापिते क्षेत्रद्वये एवं। अत्रैकक्षेत्रं द्वितीयऋणेन समानमिति तस्मै दातव्यं। त्रिभागरहितवृहत्क्षेत्रं तिर्यग्रूपेण दलयित्वा पार्श्वे संस्थाप्य संधिते एवं। तदपि पुनस्तिर्यग्रूपेण दलयित्वा ऊर्ध्वभागे (6) संधिते सत्येवं। एवं समभुजकोटौसत्यां ''आयामकदी''त्युक्तं। तत्रायामकृतौ (144) वेधस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$\left(\frac{5}{4}\right)$ वेधं $\left(\frac{5}{4}\right)$ दर्शयित्वा प्रथमऋणक्षेत्रफलं (2) अधुना स्फेटयते इति हेतोः "मुहदलहीने"त्युक्तं। तत्र मुखदलसमऋणहीनराशौ (142) ऋणाय दत्वा अवशिष्टक्षेत्रफल (4) वेधसमं दर्शयित्वा अधुना संयुज्यत इति कृत्वा "मुहवास अध्दवग्गजुदा" इत्युक्तं। तत्र मुखव्यासार्धवर्गयुक्त राशिः (146) एक मुरजखण्डस्यैतावति (146) द्वयोस्तया खण्डयोः किमित्यागतेन गुणकारद्वयेन गुण्यत इति दृष्ट्वा "बिगुणा" इत्युक्तं। एष द्विहतराशिः (292) वेधेन चतुर्भिरपवर्तितेन (73)। (5) हन्यत इति "वेहेण हदा" इत्युक्तं। एतच्छंरवावर्तसर्वक्षेत्रफलं (365) भवति।

(TLS, under v. 327, pp. 271-272)

This above Sanskrit passage needs exposition especially because *Mādhavacandra* himself did not give any accompanying diagram which would have clarified our doubts.

8. EXPOSITION BY *VIŚUDDHAMATI*

Āryikā Viśuddhamati (1975) has written a useful commentary, in Hindi, on the TLS. In it, she exposes *Mādhavacandra's* above passage with many tiny diagrams. The figure taken by her for a conch is the real, vide Fig. 6.

Without disturbing the exposition by *Viśuddhamati* (pp. 273-276) the same with more explanation, well labelled diagrams and inevitable remarks which will be begun with "we would like to" is as follows :

The dimension of the deeply sunk conch in the *Svayambhūramaṇa* ocean is 12 *yojanas* and the diameter of its circular face is 4 *yojanas*. This conch is not complete (musical) drum *(muraja = mṛdaṁga)* in shape. Therefore, if the debt *(ṛṇa)* $\boxed{\frac{5}{4}}_{2}\,2$ is added to it there, it becomes a complete drum *(saṁpuṛṇamurajākāra)* in shape, vide Fig. 7.

Here we would like to make clear that $\boxed{\frac{5}{4}}_{2}\,2$ represents a cuboid of which length, breadth and thickness are 2, 2 and 5/4 *yojanas* respectively. We would like to call this $\boxed{\frac{5}{4}}_{2}\,2$ the first debt (FD).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Half of the sum of the face (4) and the dimension (12) *(mukhāyāmasamāsārdha)* becomes the middle result *(madhyaphala)* 8 *yojanas*. This drum-shaped conch (Fig. 7) has to be divided into two parts *(khaṇḍas)* at the middle as in Fig. 8.

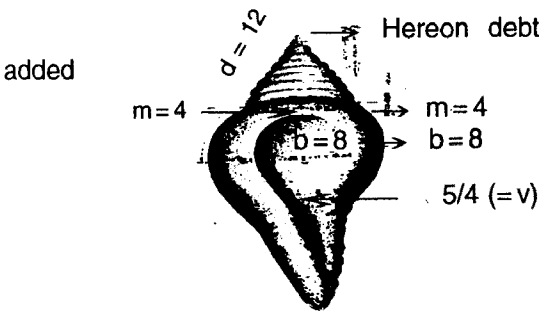

Figure 6 : The figure taken and labelled (in *yojanas*) by *Viśuddhamati* for a conch

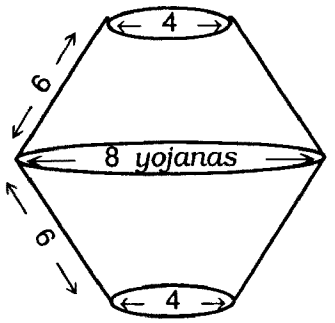

Figure 7

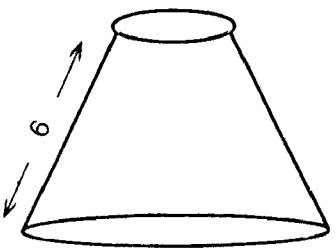

Figure 8a

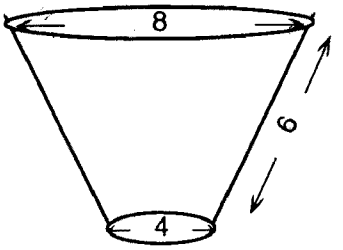

Figure 8b

The volume *(kṣetraphala)* of the conch can be obtained by taking one out of these two parts into consideration.

On dividing the drum-shaped conch (Fig. 7) into two parts at the middle, the above said debt (FD) $\boxed{\frac{5}{4}}_{2}\,2$ too becomes half $\boxed{\frac{5}{4}}_{1}\,2$ for each of the parts.

[The face and the base of each of the parts are circular in shape.]

विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदी।

(TLS, v. 96 first half, p. 88)

Translation : The square-root *(karṇī)* of ten times the square *(varga)* of the diameter *(viskambha)* becomes the circumference *(paridhi)* of a circle.

The diameter of the face of one part (take Fig. 8a for consideration) is 4 *yojanas* and the diameter of its base is 8 *yojanas*.

According to the above rule, the square of the diameter (4 *yojanas*)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

of the face *(mukha)* and the square of the diameter (8 *yojanas*) of the base *(bhūmi)* are to be multiplied by 10 which yield 16.10 = 160 *yojanas* and 64.10 = 640 *yojanas* respectively. If the square root *(vargamūla)* is obtained through the area-factor-multiplication *(kṣetrakhaṇḍanānuguṇana)*, the circumferences of the face and base are $12\frac{16}{24}$ and $24\frac{64}{48}$ *yojanas* respectively.

If the remainder $\frac{16}{24}$ in the square root of the face *(mukhamūlaśeṣa)* is reduced through dividing by 8 *(aṣṭa)* into its lowest term, then 2/3 is obtained. In the same way if the remainder $\frac{64}{48}$ in the square root of the base *(bhūmimūlaśeṣa)* is reduced through dividing by 16 *(ṣoḍaśa)* into its lowest term, then $\frac{4}{3}$ is arrived at.

In this way the subtle values of the circumferences *(sūkṣma paridhis)* of the face and base become $12\frac{2}{3}$ *yojanas* and $24\frac{4}{3}$ *yojanas* respectively.

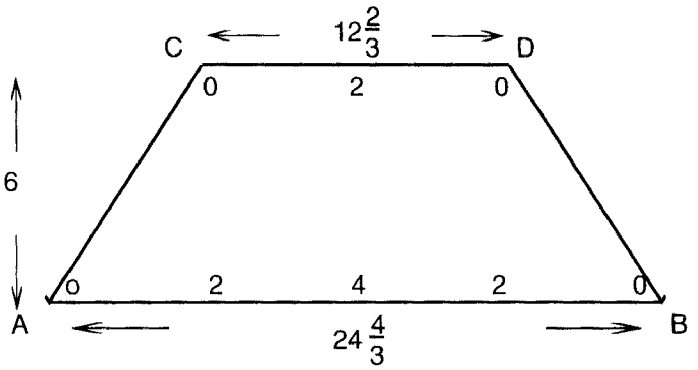

Figure 9

If the thickness most of this field (Fig. 8a) *(kṣetra-bāhalya)* (8 *yojanas*) is cut up to the middle *(madhya)* (4 *yojanas*) and expanded *(prasāra)* then we have like Fig. 9.

Here we would like to make clear that it is the thickness *(bāhalya)* 'b' which has been called the middle result and which has been calculated through halving the sum of the dimension 'd' and face 'm'.

Therefore, we may infer that

$$b = \frac{d+m}{2} \qquad [5a]$$

Now, an open question arises before us as to how the above formula [5a] is obtained from the Fig. 7.

Here it is certain that *Mādhavacandra* calls *'bāhalya'* to the middle diameter of a complete drum-like figure (Fig. 7). We have seen that *Yativṛṣabha*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

calls *'bāhalya'* to the effective thickness 'v' which is responsible to yield the volume of a conch and this is why the formula [3b] is different from the one [5a].

In this way we observe that the term *'bāhalya'* has sense of thickness in the JSOIM but has no fixed use. (Cf. also Table C)

Now we would like to say something about the Fig. 9. This figure is not two dimensional but is three dimensional. The numbers on it represent measures of thicknesses of those places where they are written. The thickness at its corners is zero. But it increases from 0 *yojana* to 5 *yojanas* in the middle. We do not claim that we have understood how the Fig. 8a is expanded through cutting its thickness *(kṣetra bāhalya)* (8 *yojanas*) up to the middle (8/2 = 4 *yojanas*) of that thickness to obtain Fig. 9. After all, the Fig. 8a is a solid figure.

Half of the sum of the thickness *(vedha)* (0) of the face and the thickness (4) of the base becomes the middle thickness of 2 *yojanas (vedharupamadhyaphala).*

To show that thickness, the face is divided into two parts. Then four parts are obtained, call them p, q, r and s, vide Fig. 10.

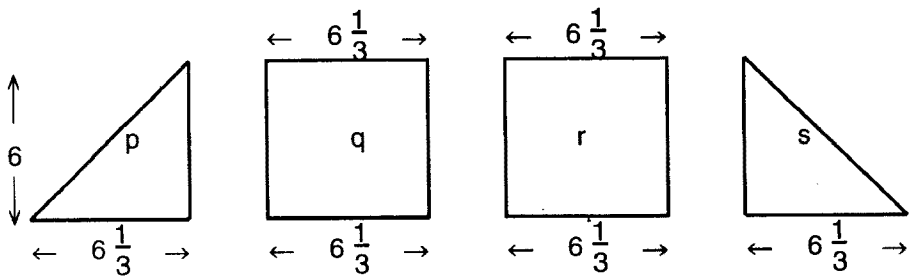

Figure 10

The two triangular fields p and s lying on either side *(ubhayapārsvasthitakṣetra)* have to be placed in such a way that they form a quadrilateral *(caturastrarūpa)* (Fig. 11).

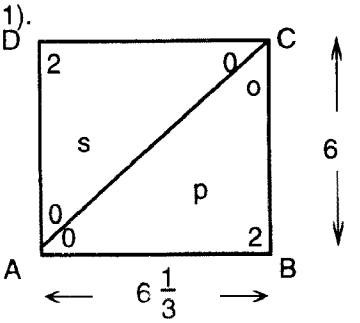

Figure 11

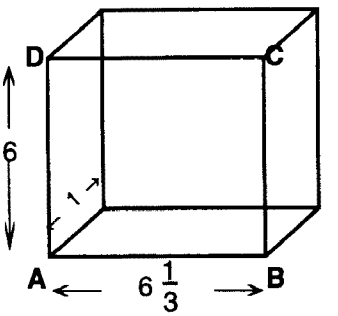

Figure 12

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In this quadrilateral form (Fig. 11) the thickness of the fields of the corners at B and D are 2 and 2 *yojanas* and those of the corners at A and C are 0 and 0 *yojana*.

To fill this diminution (or pit) *(khāta)* if we take out one-one *yojana* from the fields of 2-2 *yojanas* lying at the corners B and D and keep them on the zero places (A and C fields), then also that diminution will not be full-filled. That means, thickness is not always of one-one *yojana* there. To fill this remaining diminution the debt *(ṛṇa)* (this is the SD (second debt)) $\boxed{\frac{5}{4}}_{2}$ has to be added. That means, the thicknesses of the four fields lying at the corners A, B, C and D always become one-one *yojana*, vide Fig. 12.

If, in the remaining quadrilateral fields (q and r) without the two triangular fields (p and s) lying on either side *(pārśvadvayavartitrikoṇakṣetrarahitaśeṣa caturastrakṣetra)*, one (r) is kept with the other (q) in the opposite order *(viparyāsarūpa)*, then we get a cuboid (Fig. 13) of length $6\frac{1}{3}$, breadth 6 and thickness 4 *yojanas*. For the account of the thickness of the Fig. 13, vide Table C.

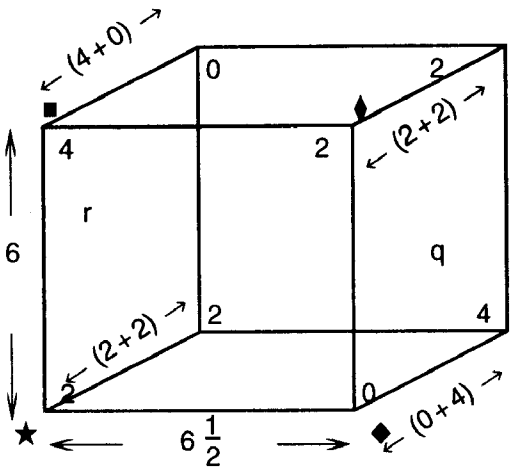

Figure 13

If we place the already obtained field (Fig. 12) with this field (Fig. 13) then we again get a cubid (Fig. 14) of which length, breadth and thickness are $6\frac{1}{3}$, 6 and 5 *yojanas* respectively.

If the fractional part (1/3 *yojanas*) of the side $6\frac{1}{3}$ *yojanas* of this field (Fig. 14) is separated, then the remaining field will be again a cuboid (Fig. 15) of which length, breadth and thickness are 6, 6 and 5 *yojanas* respectively.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

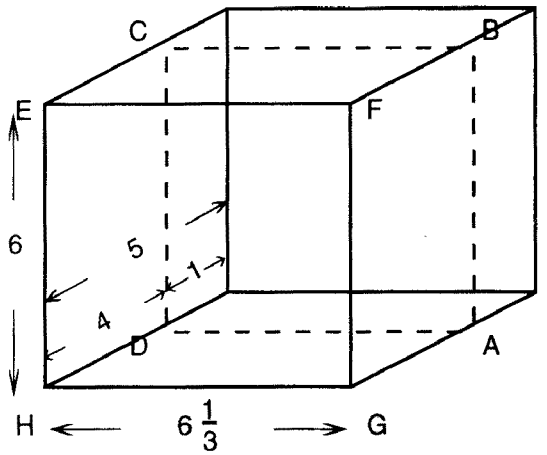

Figure 14

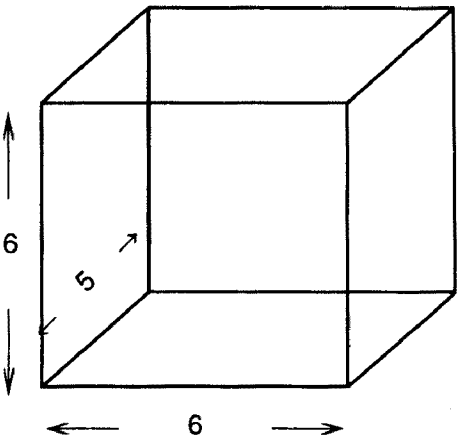

Figure 15

The separated fractional part has to be trisected with respect to its breadth. For this trisection, vide Fig. 16.

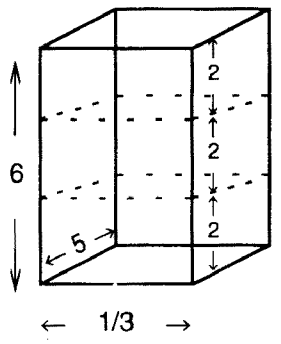

Figure 16

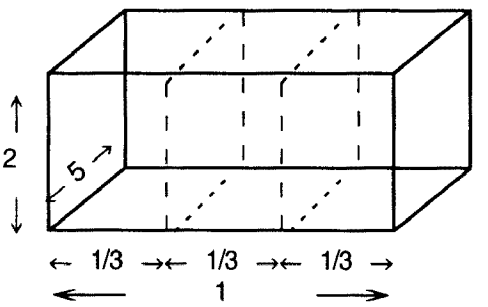

Figure 17

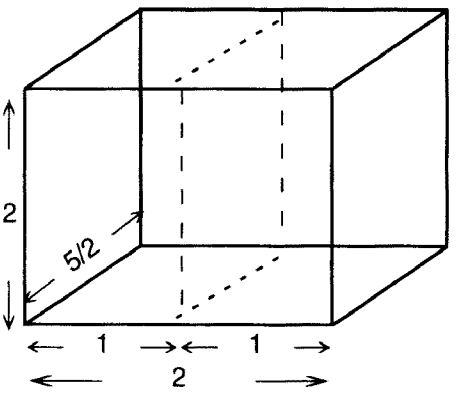

Figure 18

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

If these three parts *(khaṇḍatraya)* are placed in the form of unit length (*bhuja* = abscissa), then we get the field as shown in Fig. 17.

Bisect this field (Fig. 17) through the midcourse *(tiryagrūpa)* (i.e. thickness = 5) and then place them side by side *(pārśva)*. For this, vide Fig. 18.

Again if the above field (Fig. 18) is bisected through its midcourse (thickness $= \frac{5}{2}$), then we get two fields (Fig. 19a and 19b). Place them separately.

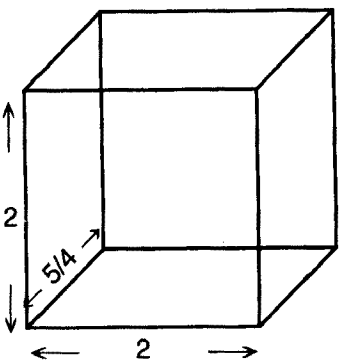

Figure 19a

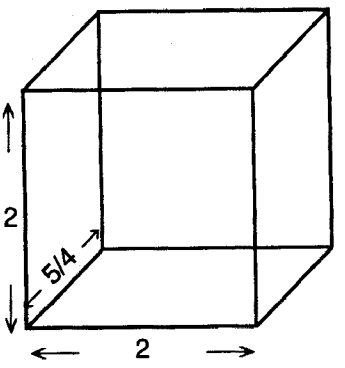

Figure 19b

In this way, we find two fields. Both of them are equal to $\boxed{\frac{5}{4}}\ 2$. Therefore one (Fig. 19a) of them has to give the SD. In other words, the SD will be remitted by one of them.

Now if the fractionless big field *(tribhāgarahitavṛhatkṣetra)* (Fig. 15) is bisected through its midcourse *(tiryagrūpa)* (thickness), then we get two fields. For placing them side by side *(pārśva)*, vide Fig. 20

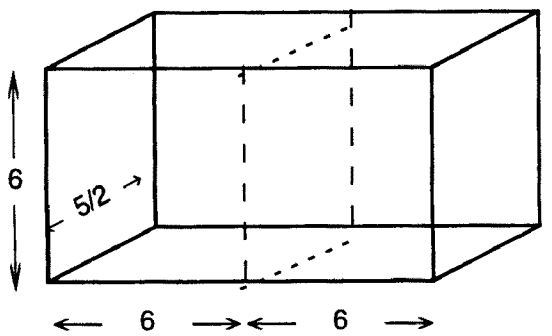

Figure 20

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

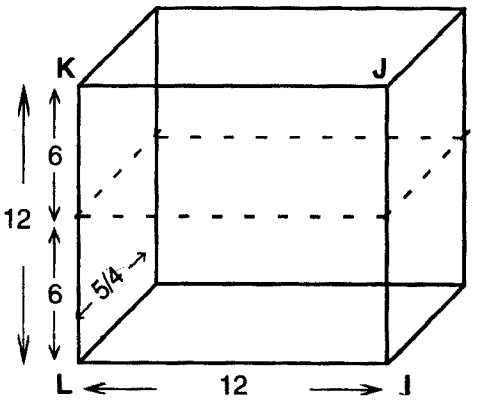

Figure 21

Again if the above field (Fig. 20) is bisected through its midcourse, then we get two fields. Place them upward *(urdhava)* as in Fig. 21.

The Analysis of the Verse 327 (TLS, p. 271)

The length *(bhujā)* and breadth *(koṭi)* of this field (Fig. 21) are 12 and 12 *yojanas* respectively. That is, they are equal *(sama)*. In the verse, it is said as "the square of a dimension **(आयामकृति)**".

Here the area of the face IJKL of the Fig. 21 is

$$12.12 = d.d$$

$$144 = d^2$$

Here we have to subtract the area of half FD. Therefore, in the verse it is said as "subtract half of the face *(mukhadalahīna)*".

The area of half FD $\boxed{\frac{5}{4}}_{1}$ $2 = 1.2 = 2 = \frac{4}{2} = \frac{m}{2}$.

From the area of the square-form-field (Fig, 20) if we subtract the number two which is equal to half the face 'm', we get

$$144 - 2 = d^2 - m/2$$

or

$$142 = d^2 - m/2.$$

Now the remaining field *(avaśiṣṭakṣetra)* is the Fig. 19b. Its face-area is

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$2.2 = \frac{4}{2}\cdot\frac{4}{2} = \left(\frac{4}{2}\right)^2 = \left(\frac{m}{2}\right)^2$$

Therefore, in the verse it is said as "added by the square of half the diameter of the face (मुखव्यासअर्धवर्गयुता)".

If the square of half the face is added, we get

$$142 + \left(\frac{4}{2}\right)^2 = d^2 - \left(\frac{m}{2}\right) + \left(\frac{m}{2}\right)^2$$

or

$$146 = d^2 - \left(\frac{m}{2}\right) + \left(\frac{m}{2}\right)^2$$

When the area of one part of the drum *(eka muraja khaṇḍa)* is 146 square *yojanas*, then what will be the area of the two parts (i.e. of the complete drum)? Here the multiplicand is 2. That means, "multiply by 2 (द्विगुणा)" is stated in the verse. If we multiply by 2, we get

$$142.2 = 2\left[d^2 - \frac{m}{2} + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right]$$

or

$$292 = 2\left[d^2 - \frac{m}{2} + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right].$$

The thickness of the FD is 5/4, the thickness of the Fig. 20 is 5/4 and the thickness of the Fig. 19b is also 5/4. Looking at the equality of the thickness, in the end of the verse it is said as "multiply by thickness (वेधेन हता)".

If we divide 292 by the denominator of the thickness (v = 5/4), we get 73 and if we multiply 73 by the numerator of the thickness, we get 365 cubic *yojanas*.

In this way, the volume of the (or a) conch comes out to be

$$365 \text{ cubic } yojanas \left(\text{or } \left[d^2 - \frac{m}{2} + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right].v\right)$$

The main item of interest in the above rationale, from the point of view of History of Mathematics is that it has been assumed that a body with curved boundaries can be deformed into another with plane boundaries in such a way that its volume remains unchanged.

9. DISCUSSION

[A] *Mādhavacandra's* rationale speaks, through the Fig. 9, that

$$CD = \pi m,\ AB = \pi\,\frac{(d+m)}{2} \text{ and } AB = 2\ CD$$

Therefore, we have

$$\pi\,\frac{(d+m)}{2} = 2.\ \pi\ m$$

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

or $$d + m = 4m$$

or $$d = 3m$$

The example (GK, *kṣetra*, Ex. 6, part : 2, p. 7) in which d = 24 and m = 8 confirms the above result.

[B] The Fig. 5 and Fig. 6 show that d is the half curved length (or slant height) of a conch. The physical significance of d for the figure of a conch seems still to be known.

[C] The volume of the FD

$$= 2.2.\frac{5}{4} = 5 \text{ cubic } yojanas,$$

the volume of half the FD

$$= 1.2.\frac{5}{4} = \frac{5}{2} \text{ cubic } yojanas$$

and the volume of the SD (or Fig. 19b)

$$= 2.2.\frac{5}{4} = 5 \text{ cubic } yojanas$$

when $v = \frac{5}{4}$ yojana.

If we take v = 5 *yojanas*, then the volume of the FD will be

$$= 5 \text{ cubic } yojanas = 1.1.5 = \boxed{5}\ 1,$$

the volume of half the FD will be

$$= \frac{5}{2} \text{ cubic } yojanas = \frac{1}{2}.1.5 = \boxed{5}\ 1\ ,$$

the volume of the SD (or Fig. 19b) will be

$$= 5 \text{ cubic } yojanas = 1.1.5 = \boxed{5}\ 1,$$

and the Fig. 15 will be as it is.

In such case, we have

$$A = 2[6.6 - \frac{1}{2}.d + 1.1)$$

or $$A = 2\left[\left(\frac{12}{2}\right)^2 - \frac{1}{2}.\frac{4}{4} + \frac{4}{4}.\frac{4}{4}\right]$$

or $$A = \frac{2}{4}\left[(12)^2 - \left(\frac{4}{2}\right) + \left(\frac{4}{2}\right)^2\right]$$

or $$A = \frac{2}{4}\left[d^2 - \frac{m}{2} + \left(\frac{m}{2}\right)^2\right]$$

This proves the formula [2h].

In this way we observe that the formulae [2h], [4a] and [4c] have

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

been originated from the same theory.

In the above theory, the thickness seems to be constant (v = 5) for different values of d and m except for the case of *Nemicandra's* formula [4c]. But *Vīrasena's* formula [3b] does not obey the just mentioned pattern. The possible reason behind this is that the generality of his formula [3b] is doubtful being 4 in place of m in denominator. This might have happened due to the influence of the example in which d = 12 *yojanas* and m = 4 *yojanas*.

The derivations of the expressions of *Mahāvīra's* formula [2c] and *Nārāyaṇa's* formula [2e] seem to have been derived from theory like the above one although Rangacharya's observation is very exact.

We, through *Mādhavacandra's* rationale, have observed that the formulae [2h], [4a] and [4c] are with $\pi = \sqrt{10}$ and the occurence of the term $\left(d^2 - \frac{m}{2}\right)$ in them is significant. Hence Hayashi's emendations [a] and [b] for the verse (DVL, v. 13, p. 35] cited by *Vīrasena* are not in their work. He himself remarks[20] whether his emendations are correct or not, it is certain that the origin of *Mahāvīra's* problem of 'conch-shell-circle' can be traced back to the calculation of the volume of a conch-shell in the Jaina canonical works.

The points raised at different places during the present study show that problems regarding the mensuration of a conch are not only with *Mahāvīra* but also with *Yativṛṣabha, Vīrasena, Nemicandra, Mādhavacandra* and *Nārāyaṇa.*

[D] *Yativṛṣabha* and *Vīrasena* have quoted the same rule for finding the area of a plane conch. This rule is in Sanskrit whereas their works are in Prakrit. Therefore, here it can be easily inferred that they might have got the rule from an unknown treatise. That treatise might have either suffered destruction or is still lying hidden from view in some unknown place, it is certain that it must be in Sanskrit, of Jaina authorship and anterior to *Yativṛṣabha.*

10. CONCLUDING REMARKS

The various patterns on the mensuration of a conch in ancient India come into sight within the JSOIM through the present article. They can be unified by making further study and developing hypothesis as well and by unearthing the unknown treatise from which *Yativṛṣabha* and *Vīrasena* have quoted the rule for finding the area of a plane conch.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

Table A : The Chronological Order of the Mathematicians whose works contain the mensuration of a conch

Date	Mathematician	Text	Written in	School	Class[α] (If any)	Elements[β] of Mensuration	Given in	Verse written in
Some date between 473 A.D. and 609 A.D.	*Yativṛṣabha*	TP	Prakrit	JSOIM	CC	A	V. 321	Sanskrit
						v	V. 322	Prakrit
C. 816 A.D.	*Vīrasena*	DVL	Prakrit	JSOIM	CC	A	V. 13	Sanskrit
						V	V. 1.3.2	Prakrit
C. 850 A.D.	*Mahāvīra*	GSS	Sanskrit	JSOIM	EC	P & A	V. 7.23 and VV. 7.65-.5	Sanskrit
C. 981 A.D.	*Nemicandra*	TLS	Prakrit	JSOIM	CC	V	V. 327	Prakrit
C. 1356 A.D.	*Nārāyaṇa*	GK	Sanskrit	Non JSOIM		P and A	VV. 10-1	Sanskrit

α The JSOIM is divided into the two classes, namely, canonical class (CC) and exclusive class (EC). The works of the CC are based on or related to Jaina canons while those of the EC are exclusively on Mathematics. For details, see : Jadhav, Dipak [To be published elsewhere] Theory of A.P. and G.P. in *Nemicandra's* Works.

β Abbreviations : A = (Plane) Area, v = Thickness, P = Perimeter and V = Volume.

www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

Table B : The Area, Volume and Thickness for a given conch

School	Mathematician	π	Area (in square units) when			Volume (in cubic units) when			Thickness (in units) when		
			Formula used	d = 12 and m = 4	d = 24 and m = 8	Formula used	d = 12 and m = 4	d = 24 and m = 8	Formula used	d = 12 and m = 4	d = 24 and m = 8
JSOIM-CC	*Yativṛṣabha*	$\sqrt{10}$	[2h]	73	294	[2h] and [3a]	365	1470	[3a]	5	5
	Vīrasena	$\sqrt{10}$	[2h]	73	294	[4a]	365	2940	[3b]	5	10
	Nemicandra	$\sqrt{10}$	[2j]	292	1176	[4c]	365	1470$^{\alpha}$ or 2940$^{\beta}$	'γ'	5/4	—
JSOIM-EC	*Mahāvīra*	3	[2b]	78	312						
		$\sqrt{10}$	[2c]	80.6	322.4						
Non-JSOIM	*Nārāyaṇa*	3	[2d] or [2e]	78	312						

Notes : 'α' : When the formula [3a] is used for calculating thickness.

'β' : When the formula [3b] is used for calculating thickness.

'γ' : *Nemicandra* has not given any formula for finding the thickness of a conch.

Table C : The Thickness Account of the Fig. 13

Corner	Field r	Field q	Addition	Thickness (in yojanas)
E	4 (base - thickness)	0 (face - thickness)	4 + 0	4
F	2 (base - thickness)	2 (face - thickness)	2 + 2	4
G	0 (face - thickness)	4 (base - thickness)	0 + 4	4
H	2 (face - thickness)	2 (base - thickness)	2 + 2	4

ABBREVIATIONS

CC	=	Canonical Class	GSS	=	*Gaṇita - sāra - saṁgraha*
DVL	=	*Dhavalā*	JSOIM	=	Jaina School of Indian Mathematics
EC	=	Exclusive Class	SD	=	Second Debt
FD	=	First Debt	TLS	=	*Trilokasāra*
GK	=	*Gaṇita - kaumudī*	TP	=	*Tiloyapaṇṇattī*

ACKNOWLEDGEMENT

The authors are highly indebted to Kundakunda Jñānapītha, *Indore for providing the facilities in preparation of the present article and thankful to Prof. L. C. Jain (Jabalpur) & Dr. Anupam Jain (Indore) for their suggestions*

REFERENCES AND NOTES

1. In the Jaina works, the concept of number arose in connection with measurement *(māna)*. One of the subdivisions of measurement is counting *(gaṇitamāna)*. Jainas have divided counting in three classes viz. *saṁkhyāta* (countable or numerable), *asaṁkhyāta* (countless or innumerable) and *ananta* (infinity).
2. *Tiloyapaṇṇatti* [TP] Part-3 ed. with *Āryikā Viśuddhamati*'s Hindi commentary by C. P. Patni, *Śrī 1008 Candraprabha Digambara Jaina Atiśayakṣetra*, Dehra - Tijara

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(Raj.), Second edition, 1997.

3. *Dhavalā* [DVL], ed. with a Hindi translation by H. L. Jain et. al. vol. 4, Book-4, Amaraoti, 1940-50. Reprinted by *Jaina Saṁskṛti Saṁrakṣaka Saṁgh* (JSSS), Sholapur, 1984.
4. *Gaṇita-sāra-saṁgraha* [GSS], ed. by and translated into English by M. Rangacharya, Chennai, 1912 ;
   ed. by and translated into Hindi by L. C. Jain, JSSS, Sholapur, 1963 and
   ed. by and translated into Kannada by Padmavathamma, *Śrī Siddhāntakirti Granthamālā*, Hombuja, 2000.

   This new edition is in two languages : English and Kannada. The references are given throughout this article from this new edition if otherwise is not stated.
5. *Trilokasāra* [TLS], ed. with *Mādhavacandra Traividya's* Sanskrit commentary and with *Āryikā Viśuddhamati's* Hindi commentary by R. C. Jain Mukhtara and C. P. Patni, Sri Mahāviraji (Raj.) VNY 2501 (=1975 A.D.).
6. *Gaṇita-kaumudi* [GK], ed. by P. Dvivedi, 2 parts, Benares, 1936/42.
7. Hayashi, Takao [1992], *Mahāvīra's* formulas for a conch-like plane figure, *Gaṇita Bhāratī*, 14, 1-10, Delhi, p. 2.
8. The term *'valaya'* is generally used for annulus.
9. Hayashi [1992], p. 4.
10. Ibid, p. 3.
11. ibid, p. 9.
12. Ibid, pp 4-10.
13. Here the term *'vyāsa'* is used for 'breadth'. The similar use also occurs in the TLS (v. 310, p. 256) while discussing circular annulus. It is very well known that the term *'vyāsa'* is generally used for diameter.
14. TP, v. 73, p. 206.
15. Jain, L. C. [1958], The Mathematics of the *Tiloyapaṇṇatti* (In Hindi), Published with the *Jambū-dvīva-paṇṇatti-saṁgho*, JSSS, 1-108, Sholapur, p. 85.
16. Ibid
17. TP, p. 42.
18. Hayashi, Takao [1996], Geometric Formulas in the *Dhavalā* of *Virasena* (780 C.E.). *Jina-manjari*, 14(2), 53-76, Ontario (Canada), p. 65.
19. Ibid.
20. Ibid, p. 67.

Recieved after revision : Dec. 2001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vol. 14, No. 1, 2002, 55-60

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

MATHEMATICAL FORMULARY OF JINISTIC PRECEPTS

■ Dr. N.L. Jain *

The present century is the century of science and technology. Only those systems will survive which have high scientificity involving intellectual and experimental verifications. The faith may be secondary factor for attractions. The Jaina religion passes this test. It postulates realistic thoughts and rational behaviour. Its early texts encourage examination of religious concepts through intelligence. It encourages self-effort to make one's own destiny. It has an ideal of welfare of the self and of all the living beings. It defines religion both ways - subjectively and objectively. It is that way of life which leads to ultimate and spiritual happiness. It improves the individual and betters the society. It has certain basic precepts formulae to make them scientifically verifiable.

It is seen that simple physical laws are applicable to complex biological systems which have made us learn about many complex phenomena of the life and the living. Why, similarly, the laws of abstract sciences like economics and psychology could not be applied to the spiritual systems? Yes, this could be done. A Jinistic formulary and graphery has been given here for understanding and, therefore, promoting the religious principles and practices of scientific basis.

Precepts : The Physical World and Spiritual World

The basic Jain tenets regarding the cosmos are given below :

1. **The Cosmos in General** - The cosmos is real and eternal. It consists of conglomeration of all that exists. It functions on natural laws without any external agency. It is a non-theocentric system.

2. **The Physical World -**

   Physically, it consists of six realities under two heads - (i) the **living** and (ii) **non-living** coexisting in (iii) **space,** (iv-v) moving and stopping through the **inert mediums of motion and rest** with respect to (vi) **time.** It, thus, postulates a 4-d existence.

3. **The Spiritual World -**

   Spiritually, the path of happiness, H, is led through the accurate knowledge of seven reals. (i-ii) The **living** and the **non-living** combine together to lead to (iii-iv) the worldly existence through the **influx** and

* Director, Jaina Kendra, Rewa-486001 (M.P.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

bonding of karmic aggregates with the living through its physical and psychological activities. However, the pure living has a longing for karmic decontaminations. Thus, we have :

Worldly Living = Pure living being (soul) + Karma (Body etc.)

Or, **Worldly living - Karmas = Pure living or liberated soul.**

The aim of human life is to attain or create the state of (vii) ultimate happiness or **liberation** by zeroing the sufferings of the birth cycles or increasing the content of happiness.

4. Formulary of Precepts :

(a) Happiness and Religiosity - This happiness, H, results in proportion to (v) **loosening** and **stopping** and (vi) **shredding** of karmic bondage throuh physical or psychological processes of abstention and austerities. The (vii) ultimate happiness is the last stage of human exaltation which could also be designated as Religiosity, R, or

$$H \alpha R$$

The happiness is acquired by following the rationalistically coordinated path of gem-trio of right faith, knowledge and conduct in comparison to 1 or 2-way path.

(b) Passions/Desires and Happiness - The human world abounds in physical or psychological desires, D, ambitions, attachments, aversions, attainments etc. - all forms of delusion-collectively called passions, P. These may be good or bad, limited and unlimited in numbers. The bad and, therefore, undesirable passions lead to sufferings. In fact, the world is a play-ground of passions resulting in a mixture of pleasurs and pains. The religious path leads to minimising pains/passions to zero and maximising the pleasures (happiness) to infinity. Mathematically, one could say that passions, P or desires, D are directly proportional to pains, W and inversly proportional to happiness, H. One could, thus, express :

$$D \alpha P \alpha W$$

or,
$$H \alpha R \alpha 1/P \alpha 1/W.$$

(c) World as a Cyclic Whirlpool - The world is assumed to be a cyclic whirlpool. The centrifugal forces of passions and possessions are working upon it for strengthening the rebirth-cycles. In contrast, observance of vows and austerities are working against it to counteract the above process. It is clears that until the centrifugal forces have exceeded the quantum of centripetal forces, no ultimate happiness or salvation will crystalize. Hence, for happiness :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Centrifugal forces of non-attachment >> Centripetal forces of passions

(d) Volitional Purity, Destinities and Karmic Density - There are four destinities, **Dy**-infernal, sub-human, human and celestial - for the living beings in order of decreasing karmic density, **Dk** and increasing volitional purity **VP.** This means that the volitional purity of the living beings is inversely proportional to karmic density, **Dk** and destinity. The Jaina system encourages the living beings to mutate their quality of purity to higher and higher levels through the process of reducing karmic density. Thus, combining the earlier formulae, we have,

Volitional purity, VP α 1/DK

or, **Higher Destinity, Dy α 1/Dk**

or, **Inner Purity α 1/Dy α 1/Dk α H**

Thus, the inner purity is directly proportional to happiness.

(e) Happiness and Karmic Density - In order to attain the highest state of happiness, one must have Dk tending to zero, so that H becomes infinity. Thus if H is defined as

$$H = D/Di = 1/Dk$$

where D is desires or passions fulfilled
Di is the total number of desires which is normally infinite
Dk is karmic density.

The religion has an objective to have H = infinity. The common man can only imagine the realisability of such a condition. Hence, he feels his mission of worldly life is to try to attain such a condition. This is easily surmisable that it is easier to reduce the number of desires to the minimum or zero to attain H = infinity, as the fulfillment of desires is virually limited and constant. This is what the Jaina religion postulates - limitation of desires results in happiness. The reduction in desires/passions could be effected by many voluntary controls and cultivation of good number of virtues checking the karmic influx and reducing Dk. Similarly, lower the karmic density, higher will be the H. As passions, P are proportional to D. P can be substituted for D in the above equation.

(f) Satisfaction/Contenment and Happiness or Karmic Density - Like happiness contentment, C is also a desirable quality in worldly life. Both of these qualities are directly related with each other. The economists define C as below :

C = Acquirement of desired objects S

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Total number of desired objects S_i

$c = S/S_i$e.

and, $C \alpha H \alpha R \alpha 1/Dk$

This formula is similar to earlier formula for happiness. Thus, if we reduce the number of desired objects, Si, we would be more content and happy.

(g) Spiritual Mathematics - In order to effect better H or C, the Jaina saints have advised to follow many primary and secondary vows. During practicing these vows, the aspirant learns about the specific spiritual mathematics where the sum of qualities results in the multiple of the qualities in effect in individual, social and spiritual levels. This could be expressed in three formulae as below :

(1) Non-vilolence,N_1 + Non-absolutism, N_2 + Non-possessions, $N_3 = N_1,N_2,N_3$

(ii) Sweating,S_1 + Self-sufficiency,S_2 + Sameness,$S_3 = S_1,S_2,S_3$

(iii) Right Faith, F + Right Knowledge, K++Right Conduct, C) = Right (F, K, C,).

(g) The Theory of Karmas - Karmavāda is the important theory of Jainism. It is one of the most scientific, philosophical and psychological theory which is capable of (i) giving strength to bear the worldly strains, (ii) reducing the number and intensity of pains and (iii) encouraging to work towards better future. It is an old form of the law of cause and effect, which has been verified by the psychologists in terms of relationship between stimulants, S and effects, R in medium ranges through a formula :

S = K in R

which indicates that specific stimulants (physical, vocal or psychical emotions etc. or karmas) of internal or external nature have specific effects. Normally, karmas are said to be a form of fine but strong force, whose binding effects our actions and normal life. Of course, this is not a complete formula as there are many other factors effecting the results. However, research could be undertaken to improve and verify this formula on karma theory at least on the physical and chemical effects caused by different passions.

(e) The Theory of Anekānta and Nayas (Aspects) - The theory of manifold predications (Anekanta) is also a very important contribution of the Jainas. It was developed on philosophical basis, but it could now be verified scientifically applying it to many physical phenomena. It states that an entity is multi-aspectal and a common man can study it only relatively with respect to some aspects, P. The absolute truth, T is, in fact, indescribale (because of language limitations and other factors). If the overall nature of an entity is A, the number of aspects is P, we have :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$A = \Sigma P = T$$

As P is infinite, we can integrate it to find the value of T as below :

$$\int_{-\infty}^{+\infty} P \, dp = T = 0$$

This theory has a septadic form of expression. On this basis, an alternative expression could also be written :

$$\int_{1}^{7} P \, dp = T = 24$$

where the parameters 0 or 24 are virtually insoluble leading to T as indescribable. However, statistically, it could be shown that the septadic nature of describing an entity could be obtained in the form of the following equations :

$$^3C_1 + {}^3C_2 + {}^3C_3 = (3 + 3 + 1) = 7$$

This principle has a very large number of beneficial applications in our life. We need not go into details. The important point is that it has acquired scientificity and verifiability.

5. Graphical Representation of Some Precepts

(a) Linear Path of Higher States of Human Beings - The Jainas have two-fold religion - one for the house-holders and the other for the ascetics, a continued higher stage of the house-holders. Both the classes of followers have to observe certain practices and develop the corresponding attributes.

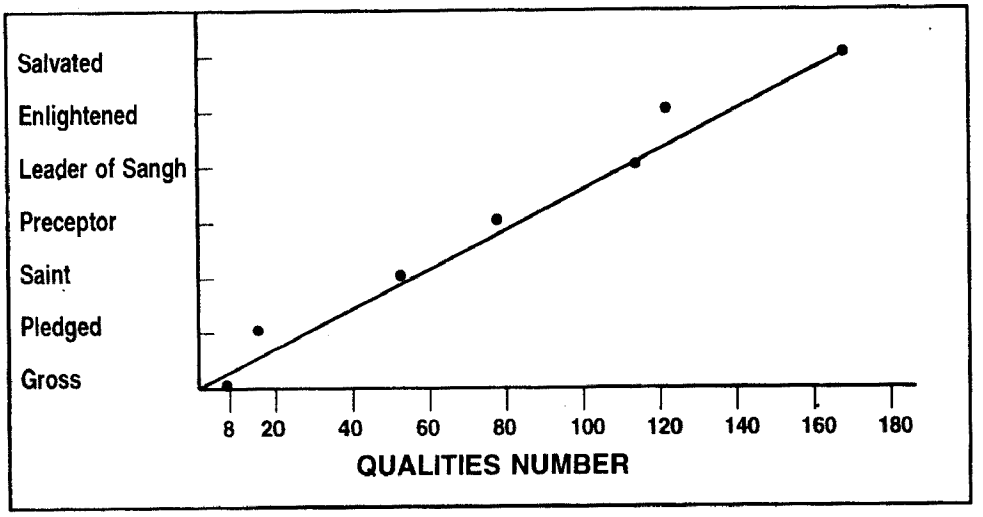

Fig. 1 : **Qualities of Different States of Human Beings**

There are two kinds of house-holders - (1) inclined (Naisthikas) and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

pledged (Pākṣika), who have to follow eight basic restraints (Mūlaguṇas) and eleven kinds of mental resolves (Pratimās). The ascetics have five varieties viz. paragons (Parmesthis) named as Arhats (Enlightened venerable - 46), Siddhas (Salvated - 8), Ācāryas (Order-Leaders - 36), Upādhyāyas (Preceptors - 25) and Sādhus (Saints - 36) whose attributes are shown against them. Thus, if one plots the number of attributes against the different states of the living beings, one gets a straight line showing that the path of spiritual or inner progress is approximately linear and not zigzag. The linear path is simplest one and refutes the charge of harsh path by the West.

(b) The Theory of Spiritual Stages (Gunasthanas) - The Jainas have developed the psychological theory of 14 spiritual stages (from wrong faith to static omniscient stage) depending on the gradually growing nature of volitional inner purity due to observance of vows and austerities. Thus purity may also be called as stages of spiritual progress for the uplevelling the society and the individual himself. It moves oneself away from one's own home and moves one towards a universal home.

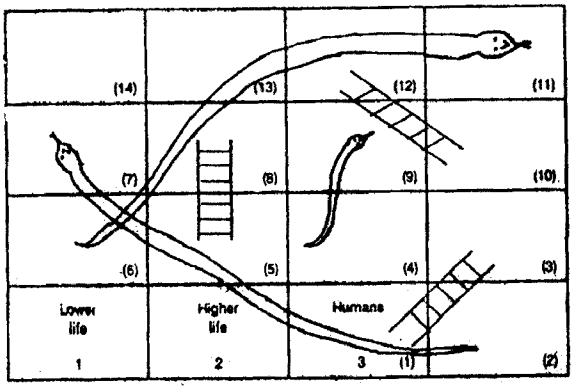

Fig. 2 : Serpent Ladder : Spiritual Stages (Gunasthana)

This purity depends inversaly on karmic density. Thus, the spiritual stages reduce the karmic density gradually leading to better happiness. These stages represent the fluctuations and improvements of mental volitions of the living beings. It is observed that they form a ladder from which a person may fall or move upwards based on the nature of his volitions. A ladder, therefore, could be framed to understand this theory. There are many such ladders one of which one a serpent-ladder is shown in Fig. 2 as per Mardia. It indicates a person may fall from stage 7 to 2 and 11 to 6 and may move upward from stage 5 to 8, 10 to 12 and 1 to 3. The elaboration of this theory needs another article.

One can, thus, see that many basic Jaina postulates can be mathematically and graphically expressed. This approach may lead to better understanding the religion in comparison to expressing them in traditional way. It is hoped that many such formulae can be developed for many other tenets of Jaina religion. The graphical representation given above are based on shwetambara tradition.

Received - 15.10.2000

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 14, अंक - 1, 2002, 61 - 70

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन गणित पर आधारित नारायण पंडित के कुछ सूत्र

■ डॉ. राधाचरण गुप्त *

दिगम्बर जैन गणितज्ञ **महावीराचार्य** द्वारा संस्कृत में रचित **गणितसार संग्रह** एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम के शासन में ईसवी की नवीं सदी के मध्य में दक्षिण भारत में हुई थी। अत्यन्त उपयोगी होने के कारण **वल्लभ** ने उसका अनुवाद कन्नड़ में और **मल्लन** (लगभग 1100 ई.) ने तेलुगु में किया था। **गणितसार संग्रह** एम. रंगाचार्य के अंग्रेजी अनुवाद के साथ मद्रास से 1912 में तथा लक्ष्मीचन्द्र जैन के हिन्दी अनुवाद के साथ 1963 में सोलापुर से (जीवराज जैन ग्रन्थमाला नं.12) प्रकाशित हो चुका है। अभी हाल में ही वह रंगाचार्य के अंग्रेजी अनुवाद तथा पद्मवतम्मा के कन्नड़ अनुवाद के साथ श्री होम्बुज जैन मठ द्वारा प्रकाशित हुआ है। (Hombuja, 2000).

सम्प्रति इस लेख में हम कुछ ऐसे गणित सूत्रों का विवरण प्रस्तुत करेंगे जो भारत में प्रथम बार **गणितसार संग्रह (= ग.सा.सं.)** में पाये जाते हैं और जो किसी न किसी रूप में बाद में **नारायण पंडित** रचित **गणित कौमुदी** (1356 ई.) में मिलते हैं। विशेष सूत्र होने के कारण यह कहना कठिन होगा कि नारायण ने उन सूत्रों की स्वतंत्र रूप से रचना की होगी। **ग.सा.सं.** की ख्याति के कारण यह मानना उचित ही होगा कि नारायण को वह ग्रंथ ज्ञात था। कहने के लिये संभावनायें अन्य भी हैं। जैसे यह तर्क दिया जा सकता है कि महावीर और नारायण दोनों ही ने सूत्रों को किसी प्राचीन ग्रन्थ से प्राप्त किये हों। लेकिन जब तक ऐसा कोई पूर्व ग्रन्थ या स्रोत स्पष्ट रूप से सामने नहीं आता, महावीर का श्रेय सुरक्षित है।

अब हम अपेक्षित सूत्रों की चर्चा करेंगे -

(1) सामान्य तथा वक्रीय बहुभुज (Polygon) -

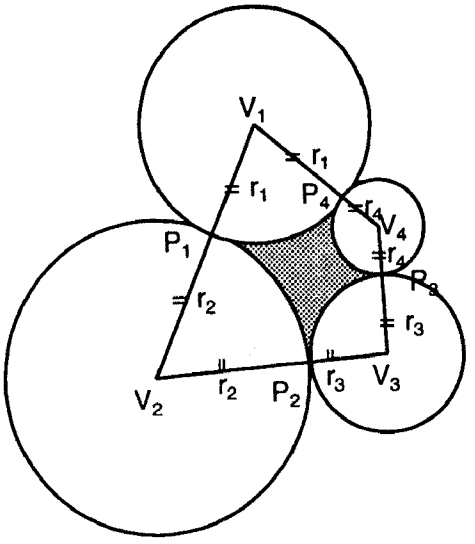

चित्र 1

चित्र 1 में बाहर से स्पर्श करते हुए (श्लिष्ट) अनेक वृत्त हैं जिनके केन्द्र में V_1, V_2, V_3, V_4 हैं और अर्द्धव्यास r_1, r_2, r_3, r_4 हैं। केन्द्रों को मिलाने से एक सामान्य बहुभुज (Polygon) बन जाता है जिसके शीर्ष V_1, V_2, V_3, V_4 हैं। वृत्तों के अन्तरनिहित P_1, P_2, P_3, P_4 एक वक्रीय (curvilinear) बहुभुज बनता है। बहुभुज की भुजायें हैं -

$V_1V_2 \equiv a_1 = r_1 + r_2 = (d_1 + d_2)/2$ ..... (1)

$V_2V_3 \equiv a_2 = r_2 + r_3 = (d_2 + d_3)/2$ ..... (2)

$V_3V_4 \equiv a_3 = r_3 + r_4 = (d_3 + d_4)/2$ ..... (3)

$V_4V_1 \equiv a_4 = r_4 + r_1 = (d_4 + d_1)/2$ ..... (4)

और परिमिति (perimeter) (जिसे महावीर ने रज्जु कहा है) -

* गणित भारती अकादमी, आर - 20, रसबहार कॉलोनी, झाँसी - 284 003 (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$p = a_1 + a_2 + a_3 + a_4 = d_1 + d_2 + d_3 + d_4$ ..... (5)

उपर्युक्त दोनों प्रकार के बहुभुजों का क्षेत्रफल निकालने के लिये महावीर का व्यावहारिक सूत्र इस प्रकार है -

रज्ज्वर्धकृतित्र्यंशो बाहुविभक्तो निरेकबाहुगुण:।
सर्वेषामश्रवतां फलं हि, बिम्बान्तरे चतुर्थांश:॥

(ग.सा.सं., VII, 39, पृ. 189)

''अर्धरज्जु के वर्ग के तृतीय अंश को भुजाओं की संख्या (n) से भाग दो। उसमें भुजाओं की संख्या से एक कम संख्या द्वारा गुणा करने से बहुभुज का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस फल का चौथाई भाग श्लिष्ट वृत्तों के अन्तरनिहित वक्रीय बहुभुज का क्षेत्रफल होगा।''

अर्थात् बहुभुज V_1V_2 ..... V_n का क्षेत्रफल $\mathbf{A} = (s^2/3).(n-1)/n$ ..... (6)

तथा वक्रीय बहुभुज P_1P_2 .....P_3 का क्षेत्रफल $\mathbf{B} = A/4$ ..... (7)

जहाँ $\mathbf{s} = p/2$, (अर्धरज्जु) ..... (8)

और भुजाओं की संख्या n है।

त्रिभुज (n=3) के उदाहरण में महावीर ने भुजाओं के मान 5, 7 और 6 दिये हैं। (**ग.सा.सं. VII, 41**). अत:

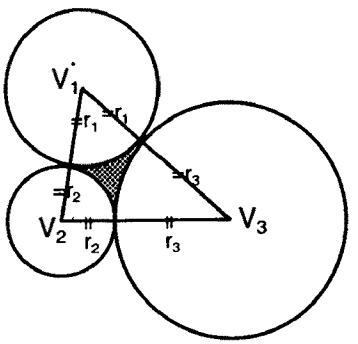

ज्यद्रज्ञ २

$V_1V_2 = a_1 = 5 = r_1 + r_2$

$V_2V_3 = a_2 = 6 = r_2 + r_3$

$V_3V_1 = a_3 = 7 = r_3 + r_1$

$\therefore p = 18, s = 9, r_1 = 3, r_2 = 2, r_3 = 4.$

सूत्र (6) से, A = 18;

तथा सूत्र (7) से , B = 9/2, जो कि श्लिष्ट वृत्तों से घिरे वक्रीय त्रिभुज (रेखांकित) का क्षेत्रफल है। एक अन्य उदाहरण (VII, 42) में महावीर ने भुजायें न देकर तीनों वृत्तों के व्यास 6, 5, 4 दिये हैं। अत: $d_1 = 6 = 2r_1$, $d_2 = 5 = 2r_2$, $d_3 = 4 = 2r_3$.

यहां सूत्र (5) से $p = d_1 + d_2 + d_3 = 15 = 2s$.

अत: पूर्ववत् (6) और (7) से A = 25/2, तथा B = 25/8.

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि महावीर के मूल सूत्र में भुजाओं या वृत्तों का समान होना जरूरी नहीं है। फिर भी n को 3 से अधिक लेने पर विवेचन में (व्यापक रूप सूत्र को लेने पर) कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। अत: आगे हम केवल समानवृत्तों से बने और घिरे समबहुभुजों (regular polygons) का ही विचार करेंगे। तब

$s = (a_1 + a_2 + a_3 + ...a_n)/2 = \frac{na}{2}$ ..... (9)

तथा सूत्र (6) का रूप होगा -

$A = (n^2 - n).\ a^2/12$ ..... (10)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारायण ने अपनी **गणित कौमुदी** (IV, 15) में समबहुभुज के **क्षेत्रफल** निकालने का जो सूत्र दिया है वह ठीक नियम (10) से मिलता है। अत: कहा जा सकता है कि उन्होंने महावीर के मूल सूत्र (6) का सरलीकरण किया। और विवरण के लिये 1992 में छपे **अर्हत् वचन**, वर्ष - 4, अंक - 1 का पृष्ठ 50 देखें।

नारायण ने एक अन्य परिवर्तन भी किया। वक्रीय बहुभुज के लिये उन्होंने अगले सूत्र (IV, 16) में निम्नलिखित नियम दिये -

$$B = (p/2)^2.(n-1)/9n \quad \ldots\ldots (11)$$

अथवा $$B = A/3 \quad \ldots\ldots (12)$$

जहाँ $$p = d_1 + d_2 + \ldots\ldots + d_n \quad \ldots\ldots (13)$$

$$= nd, \text{ समान वृत्तों के लिये।} \quad \ldots\ldots (14)$$

तथा A का मान सूत्र (10) से लिया गया। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि महावीर को सूत्र (7) तथा नारायण को सूत्र (12) कैसे प्राप्त हुए और उनमें कौन ज्यादा व्यावहारिक है। इसे समझने के लिये हम पहले वृत्त के उस भाग (sector) का क्षेत्रफल निकालेंगे जो समबहुभुज के अन्दर आता है। समान n भुजा वाले बहुभुज का आन्तरिक (interior) कोण 180 (n-2)/n अंश (degrees) होता है जो कि केन्द्र पर बने वृत्तांश (sector) का भी कोण है।

अत: एक वृत्तांश का क्षेत्रफल $= (\pi r^2).180(n-2)/360.n \quad \ldots\ldots (15)$

$$= 3\,a^2(n-2)/8n \quad \ldots\ldots (16)$$

जहाँ $$a = 2r, \quad \ldots\ldots (17)$$

तथा $$\pi = 3 \text{ (व्यावहारिक मान)} \quad \ldots\ldots (18)$$

$\because$ सभी n वृत्तांशों का क्षेत्रफल होगा $K = 3\,a^2(n-2)/8 \quad \ldots\ldots (19)$

इस प्रकार (10) और (19) से

$$B \equiv A - K = a^2(2n^2 - 11n + 18)/24 \quad \ldots\ldots (20)$$

तथा $$B/A = (2n^2 - 11n + 18)/2n\,(n-1) \quad \ldots\ldots (21)$$

समबहुभुजों में वर्ग (n = 4) का विवेचन अत्यन्त सरल और सीधा है। महावीर को इस संबंध में निम्नलिखित स्फुट (exact) सूत्र ज्ञात था (**ग.सा.सं.** VII, $82\frac{1}{2}$) -

$$B_4 = 4r^2 - \pi r^2 \quad \ldots\ldots (22)$$

$$= a^2 - 3a^2/4 \quad (\pi = 3 \text{ लेने पर})$$

$$= a^2/4 = A/4 \quad \ldots\ldots (23)$$

जो कि उनका सूत्र (7) ही है। समीकरण (21) से भी n = 4 लेने पर, B/A का मान 1/4 आता है। (n = 3 से भी यही मान आता है।)। लेकिन यदि (21) में n = 5 लिया जाये तो

$$B/A = 13/40 \simeq 1/3 \text{ (लगभग)} \quad \ldots\ldots (24)$$

जो कि नारायण ने अपने सूत्र (12) में लिया है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि सूत्र (11) और (12) देने में नारायण का आधारभूत ध्यान पंचभुज (n = 5) पर था। वैसे व्यापक सूत्र (21) से यह स्पष्ट है कि B/A का मान सदा न 1/4 और नाही 1/3 होगा। अधिक जानकारी के लिये संलग्न सारणी (Table) देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारणी – समबहुभुजों का क्षेत्रफल (a = भुजा या व्यास)

n का मान	n = 3	n = 4	n = 5	n = 6	सूत्र
सामान्य बहुभुज क्षेत्रफल A =	$a^2/2$	a^2	$5a^2/3$	$5a^2$	सूत्र (10) से
वक्रीय समभुज क्षेत्रफल B =	$a^2/8$	$a^2/4$	$13a^2/24$	a^2	सूत्र (20) से
B/A =	1/4	1/4	13/40	2/5	सूत्र (21) से

टिप्पणि - B/A का मान महावीर ने 1/4 और नारायण ने 1/3 लिया।

जानकारी के लिये क्षेत्रफल के आधुनिक गणित से निकाले गये सूत्र इस प्रकार हैं -

$$A = (n/4).a^2.\cot(\pi/n) \quad \text{..... (25)}$$

$$B = A - \pi a^2(n-2)/8 \quad \text{..... (26)}$$

यहाँ नारायण के सूत्र (12) के विषय में एक अन्य प्रश्न भी उठ सकता है। हमने सूत्र (16) को कोण (angle) के माप संबंधी ज्ञान से निकाला है जो कि शायद उस समय उपयोग में नहीं लाया गया हो। एक प्राचीन विधि से भी नारायण का काम चल सकता था।

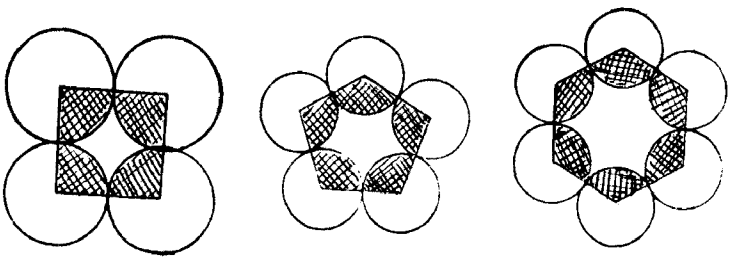

सम्मिलित चित्र 3

n = 4 तथा 6 के लिये चित्रों से (चित्र 3 देखिये) सीधे K का मान क्रमश: -

πr^2 तथा $2\pi r^2$ [सूत्र (19) देखिये]

सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। औसत (average) लेने से n = 5 के लिये K का मान हुआ

$$K = (3/2)\pi r^2 = 9a^2/8 \quad \text{..... (27)}$$

जिससे $B = (5a^2/3) - (9a^2/8) = 13a^2/24$ ..... (28)

इसके फलस्वरूप (24) अर्थात् (12) मिल जाता है।

इस सन्दर्भ में गणित प्रेमियों को रुचिपूर्ण सूत्र (19) की खोज आनन्ददायक होगी ; क्योंकि ध्यान देने से हमें मालूम हो जायेगा कि K के मान एक समानान्तर श्रेणी (A.P.) में हैं जिसमें वृद्धि की दर $\pi r^2/2$ है!

जहाँ तक महावीर के मूल सूत्र (6) की उपपत्ति की बात है उसे मोटे रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में (empirically) इस प्रकार समझा जा सकता है। माना कि समबहुभुज के परिवृत्त (circumcircle) की त्रिज्या R और परिधि C है। जैसे जैसे भुजाओं की संख्या बढ़ेगी, वैसे वैसे बहुभुज परिवृत्त की तरफ अग्रसर होगा। अर्थात् यदि s का मान C/2 होता है तो अन्ततः (limit में जब $n \rightarrow \infty$) A का मान πR^2 (यानी $3R^2$ या $C^2/12$, जहाँ $C = 6R$) होना चाहिये। इसलिये हम A को निम्नलिखित रूप में ले सकते हैं -

$$A = us^2 (1 \pm \frac{v}{n}) \quad \ldots\ldots (29)$$

जहाँ अज्ञात स्थिरांक u व v को निकालना है। अब इसमें लिमिट ($n \rightarrow \infty$) लेने पर

$$C^2/12 = u(C/2)^2$$

या,
$$u = 1/3$$

अतः (29) अब,
$$A = (s^2/3).((1 \pm \frac{v}{n}) \quad \ldots\ldots (30)$$

होगा। फिर, n के समी मानों के लिये,

$$A < \pi R^2 = C^2/4\pi < C^2/12 \quad \ldots\ldots (31)$$

इसलिये (30) में धन (+) चिह्न न होकर ऋण [-] होगा। अतः

$$A = (s^2/3).(1 - \frac{v}{n}) \quad \ldots\ldots (32)$$

अन्त में v को निकालने के लिये हम वर्ग के लिये (32) को लगा सकते हैं, जिससे -

$$a^2 = (4a^2/3).(1 - \frac{v}{4}) \quad \ldots\ldots (32)$$

या
$$v = 1$$

जिसे (32) में रखने से हमें सूत्र 6 मिल जाता है।

(2) पैशाचिक गणित का एक प्रश्न

महावीर के क्षेत्रगणित विषयक अध्याय का सबसे बड़ा भाग पैशाचिक प्रश्नों पर है। अर्थात् वे जटिल प्रश्न जिनके हल करने के लिये दानवीय शक्ति चाहिये। उनमें से एक छोटा सा उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न – ऐसे दो समद्विबाहु त्रिभुज बताओं जिनके क्षेत्रफल और रज्जु (perimeter) समान हों और सभी भुजायें पूर्णांकों में हों। (**ग.सा.सं.** VII, 138, पृ. 220).

मूल श्लोक इस प्रकार है -

द्विसमत्रिभुजक्षेत्रद्वयं तयोः क्षेत्रयोःसमं गणितम्।
रज्जू समे तयोःस्यात् को बाहुः का भवेद्भूमिः॥ 138॥

आधुनिक गणितीय भाषा में प्रश्न का मतलब है कि हमें निम्नलिखित समीकरणों का पूर्णांकों में हल चाहिये -

$$2a + b = 2x + y \quad \ldots\ldots (33)$$

$$b^2 (4a^2 - b^2) = y^2 (4x^2 - Y^2) \quad \ldots\ldots (34)$$

जहाँ a,**a** : x,**x** भुजाएँ और b,y भूमियाँ (bases) हैं।

इस प्रश्न हल करने के लिये महावीर ने स्वयं एक व्यापक सूत्र दिया है (**ग.सा.सं.**, VII, 13[illegible] पृ. 219) जिसमें त्रिभुजों की रज्जु और क्षेत्रफल किसी भी अनुपात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पूर्णांकों का) में हो सकते हैं। विस्तृत जानकारी **ग.सा.सं.** के अनुवादों और दत्त तथा सिंह द्वारा लिखित प्रसिद्ध **हिन्दू गणित का इतिहास** (भाग II, पृ. 224 - 225) में उपलब्ध है।

महावीर के व्यापक सूत्र से उपर्युक्त प्रश्न का जो उत्तर आता है, उसके अनुसार एक त्रिभुज की भुजायें होंगी 29, 29 तथा 40 (आधार या भूमि) और दूसरे की 37, 37 व 24 (प्रत्येक त्रिभुज का क्षेत्रफल = 420, तथा रज्जु = 98).

नारायण की गणित कौमुदी में भी 'पैशाचिकम्'' विभाग है। लेकिन महावीर का उपर्युक्त प्रश्न तथा उसके हल करने का सूत्र, केवल कुछ शब्दों की हेराफेरी के साथ **गणित कौमुदी** में भी पाया जाता है। नमूने के लिये नारायण का प्रश्न देखिये -

द्विसमत्र्यस्रयो रज्जू समौ च गणिते समे
तयोर्वद भुजादीनि गणितज्ञोऽसि चेत् सखे॥ 84॥

(**गणित कौमुदी,** IV, उदाहरण 84)

मेलजोल स्पष्ट है। यहाँ तक कि नारायण ने महावीर के इस सन्दर्भ में प्रयुक्त 'रज्जु' शब्द को भी यहाँ अपना लिया।

डॉ. परमानन्दसिंह के अनुसार उपर्युक्त प्रश्न महावीर ने ही प्रथम बार दिया था। (देखिये - **गणित भारती,** खंड 21, पृ. 53) महावीर के आठ सौ वर्ष बाद यूरोप में बहुत से गणितज्ञों ने भी उपर्युक्त पैशाचिक प्रश्न का विवेचन किया। इनमें फ्रांस के फान वान शूटेन कनिष्ठ (Frans van Schooten, 1657) तथा जे. एच. रान (J. H. Rahn, 1697) प्रमुख थे।

(3) चापक्षेत्र गणित (Measurement of Circular Segment) -

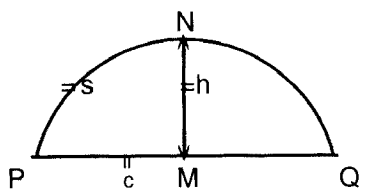

चित्र 4
अर्द्धवृत्त की चाप खण्ड

मान लो कि चित्र 4 में प्रदर्शित चाप क्षेत्र (bow-figure) यानी वृत्तीय चापखंड (Segment of a circle) में जीवा PQ, शर या इषु (arrow) MN, तथा वक्रीय चाप (arc) PNQ की लम्बाई क्रमशः c, h तथा s है। नारायण ने अपनी **गणित कौमुदी** (IV, 12) में अर्धवृत्त (semicircle) तक के चाप क्षेत्र के लिये निम्नलिखित व्यावहारिक सूत्र दिये हैं (देखिये गणित भारती, खंड 21, पृ. 14 - 15) :-

चाप, $s = (2c + 2h)/2 = c + h$ ..... (35)

चापखंड का क्षेत्रफल, $A = s.2h/4$ ..... (36)

$= (c + h).h/2$ ..... (37)

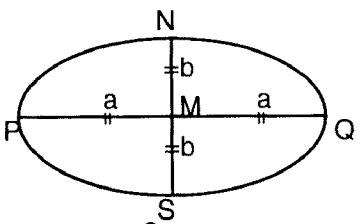

चित्र 5

भारतीय गणित के ख्याति प्राप्त विद्वान, जापान के तकाओ हयाशी (Takao Hayashi) ने 1990 में प्रकाशित (गणित भारती, खंड 12 देखें) एक लेख में नारायण के सूत्रों का विस्तृत विवेचन किया है। उनके अनुसार नारायण के सूत्रों का आधार वे सूत्र हैं जो महावीर ने आयतवृत्त (elongated circle) या दीर्घ वृत्त (ellipse) के लिये प्रयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किये हैं। **ग.सा.सं.**, (VII, 21, पृ. 185) में 2a आयाम (लम्बाई) तथा 2b व्यास (चौड़ाई) वाले आयतवृत्त (ellipse) के निम्नलिखित व्यावहारिक सूत्र हैं :-

व्यासार्धयुतो द्विगुणित आयतवृत्तस्य परिधिरायाम:।
विष्कम्भचतुर्भाग: परिवेषहतो भवेत्सारम्॥ 21॥

''आयाम में आधा व्यास जोड़कर दुगुना करने से आयतवृत्त की परिधि प्राप्त होती है। व्यास के चौथाई भाग को परिधि से गुणा करने से क्षेत्रफल मिलता है।''

अर्थात्, परिधि, $p = 2(2a + b)$ ..... (38)

तथा क्षेत्रफल $A = p.2b/4$ ..... (39)

आयतवृत्त को दोहरा (double) चाप क्षेत्र मानें तो $2a = c$, $b = h$, $p = 2s$.

तब सूत्र (38) से (35), तथा (39) से (36) प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार हयाशी के अनुमान या विचार की पुष्टि होती है। सम्भव है कि नारायण महावीर के सूत्रों से भलीभांति परिचित और प्रभावित हों।

लेकिन एक बात विचारणीय है। ऊपर दिये गये सूत्रों का संबंध क्या उन प्राचीन सूत्रों से भी है जो किसी न किसी रूप और सन्दर्भ में यहाँ वहाँ पाये जाते हैं। जैसे क्षेत्रफल के लिये एक बहुत ही व्यापक प्राचीन सूत्र है -

क्षेत्रफल = (घेरा) x (चौड़ाई)/4 ..... (40)

दिलचस्प बात यह है कि वृत्त और वर्ग दोनों के लिये (40) सही है। महावीर ने उसे दीर्घवृत्त के लिये लगाया तो नारायण ने दोहरे चापखंड के लिये। सूत्र (37) को तो महावीर ने स्वयं (**ग.सा.सं.**, VII, 43, पृ. 190) चापखंड का सीधे व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये दिया है। वास्तव में सूत्र (37) का दिग्दर्शन हमें विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताओं में होता है तथा श्रीधर (750 ई. लगभग) ने भी उसे एक परिवर्धित रूप में दिया है। सूत्र (35) या (38) पर भी इस लेख के लेखक ने कुछ नवीन खोज की है। इस पूरे विषय की सामग्री लेखक के कुछ अन्य लेखों में छपने वाली है। गणित के इतिहास को पढ़ने और उसमें शोध करने से हमें प्राचीन काल की सभ्यताओं के एक दूसरे के सम्पर्क तथा आदान - प्रदान की झलकियाँ मिलती हैं।

4. एकांश भिन्नें (Unit Fractions) -

अन्त में एकांश भिन्नों के विषय में कुछ चर्चा करेंगे जिसमें महावीराचार्य का विशेष योगदान है। सामान्यतया साधारण (simple) भिन्नें ही विभिन्न देशों के प्राचीन गणित में पाई जाती हैं। लेकिन प्राचीन जैन आगमों में जटिल भिन्नों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। जैसा **सूर्यप्रज्ञप्ति** (सूत्र 18) में **'चत्तारि जोयणाइं अद्धबावण्णं च तेसीइसयभागे''** के अनुसार मान $4 + (51\frac{1}{2})/183$ योजन है।

इस प्रकार **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** (सूत्र 22) में एक संख्या (भिन्न सहित) $1892\frac{(7\frac{1}{2})}{19}$ है।

मिस्र देश के एक अति प्राचीन ग्रंथ में एकांश भिन्नों की एक सारणी मिलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन उनका विस्तृत गणित भारत में पहली बार महावीर ने अपने **ग.सा.सं.** में दिया। यहाँ उनके कुछ नियम प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(I) संख्या एक को अनेक एकांश भिन्नों में निरूपित करना –

यदि 1 को r एकांश भिन्नों में निरूपित किया जाये तो हरों (denominators) को प्राप्त करने के अनेक नियम हैं। **ग.सा.सं.**, (III, 75, पृ. 52) में एक नियम इस प्रकार है -

रूपाद्यास्त्रिगुणिता हरा क्रमशः द्विद्वित्र्यंशाभ्यस्तावादिम चरमौ।

'1 से आरम्भ होकर क्रमशः उत्तरोत्तर 3 से गुणा करो। इस प्रकार प्राप्त (r) पदों के प्रथम को 2 से तथा अन्तिम (rth) को 2/3 से गुणा करने पर अभीष्ट हर प्राप्त हो जाते हैं।

अर्थात्

$$1 = \frac{1}{(2).1} + \frac{1}{3} + \frac{1}{3^2} + \ldots\ldots\ldots\ldots + \frac{1}{3^{r-2}} + \frac{1}{(2/3).3^{r-1}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (41)$$

हूबहू यही सूत्र नारायण की **गणित कौमूदी** (XII, 2) में भी है, केवल शब्दों का परिवर्तन मात्र है।

(II) 1/N को एकांश भिन्नों में बदलना –

इसके लिये **ग.सा.सं.** (III, 78, पृ. 54) के व्यापक सूत्र का उपयोग करके हमें निम्नलिखित नियम मिलता है -

$$\frac{1}{N} = \frac{1}{N(N+1)} + \frac{1}{(N+1)(N+2)} + \frac{1}{(N+2)(N+3)} + \ldots\ldots\ldots\ldots +$$

$$\frac{1}{(N+r-2)(N+r-1)} + \frac{1}{(N+r-1)} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (42)$$

इसमें यदि N = 1 रखा जाये तो हमें एक साधारण निरूपण या जोड़ मिल जायेगा -

$$1 = \frac{1}{1.2} + \frac{1}{2.3} + \ldots\ldots\ldots\ldots + \frac{1}{(r-1)r} + \frac{1}{r} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (43)$$

जो गणितकौमुदी (XII,1) में भी है। यदि हरों का मान बहुत तेजी से बढ़ाना हो तो निम्नलिखित सरल नियम को बारबार लगाना चाहिये -

$$\frac{1}{N} = \frac{1}{(N+1)} + \frac{1}{N(N+1)} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (44)$$

(III) किसी भी भिन्न को अनेक एकांश भिन्नों में बदलना –

ग.सा.सं., (III, 80, पृ. 54) में एक बहुत ही सरल तथा उपयोगी सूत्र है जिसका रूप आधुनिक गणितीय संकेतों में इस प्रकार है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$\frac{p}{q} = \frac{1}{r} + \frac{x}{r.q}, \quad \text{जहाँ} \quad \frac{q+x}{p} = r \quad \ldots\ldots (45)$$

इससे हम किसी भी भिन्न (p/q) को अनेक एकांश भिन्नों में बदल सकते हैं। q में धीरे धीरे 1, 2, 3, 4, ... जोड़कर उतना ही बढ़ायें कि उसमें p का भाग (division) पूरा पूरा हो जाये तथा भागफल r (पूर्णांक) मिल जाये। आवश्यकतानुसार नियम को दूसरे पद x/r.q में फिर लगायें।

उदाहरण – 3/10 को एकांश भिन्नों में बदलो।

यहाँ p = 3 तथा q = 10. अब 10 में 1 जोड़ा तो 11 आया जो 3 से पूरा पूरा नहीं कटता। फिर 10 में 2 जोड़ा तो 12 आया जिसमें 3 का पूरा पूरा भाग चला जाता है। अर्थात् x = 2, तथा (45) से, r = (q+x)/p = (10+2)/3 = 4

अतः $$\frac{3}{10} = \frac{1}{4} + \frac{2}{4 \times 10} = \frac{1}{4} + \frac{1}{20} \quad \ldots\ldots (46)$$

ध्यान देने से हम सीधे ही

$$\frac{3}{10} = \frac{2+1}{10} = \frac{2}{10} + \frac{1}{10} = \frac{1}{5} + \frac{1}{10} \quad \ldots\ldots (47)$$

प्राप्त कर सकते हैं। इसे सूत्र (45) से x = 5 लेकर भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार यदि x = 8 लें तो सूत्र (45) से हमें

$$\frac{3}{10} = \frac{1}{6} + \frac{8}{6 \times 10} = \frac{1}{6} + \frac{2}{15} \quad \ldots\ldots (48)$$

मिलेगा। यहाँ 2/15 को एकांश भिन्नों में बदलने के लिये सूत्र (45) का फिर उपयोग किया जा सकता है, जैसे

$$\frac{2}{15} = \frac{2}{16} + \frac{2}{15} - \frac{2}{16} = \frac{1}{8} + \left(\frac{2}{15} - \frac{1}{8}\right) = \frac{1}{8} + \frac{1}{120}$$

इसे (48) में रखने पर -

$$\frac{3}{10} = \frac{1}{6} + \frac{1}{8} + \frac{1}{120} \quad \ldots\ldots (49)$$

इस प्रकार हम पाते हैं कि एक भिन्न (3/10) को अनेक प्रकार से, (46), (47), (49), एकांश भिन्नों में बदला जा सकता है। लेकिन यदि x का मान **कम से कम** लिया जाये तो निरूपण में पहली एकांश भिन्न का मान सबसे बड़ा होगा। ऊपर के उदाहरण में 1/4 का मान, 1/5 तथा 1/6 से बड़ा है। महावीर के लगभग 350 वर्ष बाद यूरोप के फीबोनाट्ची (Fibonacci) ने ऐसा ही किया था। सूत्र (45) की तुलना ब्रह्मगुप्त के उस नियम से की जा सकती है जो उन्होंने भागफल निकालने की दृष्टि से दिया है। (**ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त,** XII, 57).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ ग्रन्थ व लेख सूची –

1. B. Datta and A.N. Singh, ***History of Hindu Mathematics.*** Single Vol. ed., Bombay, 1962.
2. Padmakar Dvivedi (ed.), ***Gaṇita Kaumudī of Nārāyaṇa Paṇḍita,*** Part II, Benares, 1942.
3. R.C. Gupta, ***Mahāvīrācārya on the Perimeter and Area of an Ellipse,*** **Mathematics Education,** Vol. 8, No. 3 (1974), Sec. B, pp. 17-19.
4. R.C. Gupta,, ***Mahāvīrācārya's Rule for the Area of a Plane Polygon,*** **Arhat Vacana, 4** (1) (Jan. 1992), 45-54.
5. R.C. Gupta, ***The Mahāvīra-Fibonacci Device to Reduce p/q to Unit Fractions,*** **HPM Newsletter,** No. 29 (July 1993), 10-12.
6. R.C. Gupta, ***Areas of Regular Polygons in Ancient and Medieval Times,*** **Gaṇita Bhāratī,** 16 (1994), 61-65.
7. R.C. Gupta, *प्राचीन भारतीय गणित की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ,* NCERT, New Delhi, 1997, Chapter 5.
8. R.C. Gupta, ***Mensuration of a Circular Segment in Babylonian Mathematics,*** **Gaṇita Bhāratī, 23**(2001), 12-17
9. R.C. Gupta, ***Area of a Bow-Figure in India,*** sent for publication in a Felicitation Volume.
10. R.C. Gupta, ***Area of a Bow-Figure in Jaina Mathemtics,*** **Arhat Vacana 14** (1), January 2002, 9-15.
11. Takao Hayashi, ***Nārāyaṇa's Rule for a Segment of a Circle,*** **Gaṇita Bhāratī,** 12 (1990), 1-9.
12. L.C. Jain (ed.), ***Gaṇita-sāra-saṅgraha with Hindi Translation,*** Sholapur, 1963.
13. Padmavathamma (ed.), ***Gaṇita-sāra-saṅgraha with her Kannada & Rangacharya's English translations,*** Hombuja, 2000.
14. T.A. Sarasvati Amma, ***Geometry in Ancient and Medieval India,*** Delhi, 1979.
15. R.S. Sharma **et al** (ed.), ***Brāhmasphuta-siddhānta of Brahmagupta,*** Vol. III, New Delhi, 1966.
16. P. Singh (transl.), ***Gaṇita Kaumudī of Nārāyaṇa,*** Chapter IV, **Gaṇita Bhāratī,** 21 (1999), 10-73.

प्राप्त – 03.07.2001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 14, अंक - 1, 2002, 71 - 74

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन साहित्य में ध्वनि / शब्द विज्ञान

■ डॉ. अभयप्रकाश जैन *

द्रव्य कर्णेन्द्रिय के आधार से भाव कर्णेन्द्रिय के द्वारा जो ध्वनि सुनी जाय उसे शब्द कहते हैं। यह शब्द अनंत परमाणुओं के पिण्ड (स्कंध) से ही उत्पन्न होता है। अनंत परमाणुओं की पिण्ड, स्वभाव से ही उत्पन्न शब्द योग्य वर्गणायें इस लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं। जहाँ - जहाँ शब्द के उत्पन्न करने योग्य बाह्य साधन मिल जाते हैं वहाँ ये शब्द वर्गणायें स्वत: शब्द (नाद) रूप में परिणत हो जाती हैं। महर्षि कणाद शब्द को आकाश का गुण बताते हैं। यदि वास्तव में शब्द आकाश का गुण होता तो कर्णेन्द्रिय द्वारा वह ग्रहण में ही न आ पाता क्योंकि आकाश तो अमूर्तिक है। अमूर्तिक पदार्थ का गुण भी अमूर्तिक होना चाहिये। शब्द तो मूर्तिक है इसीलिये वह मूर्तिक इन्द्रियों, रेडियो, टेपरिकार्ड द्वारा पकड़ा जाता है। शब्द दो प्रकार का होता है - प्रायोगिक और वैशेषिक। जो शब्द पुरुष आदि के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह प्रायोगिक कहलाता है, जो मेघ आदि से उत्पन्न होता है वैशेषिक कहलाता है। शब्द के दो भेद हैं - भाषा और अभाषा। उसमें भाषात्मक शब्द अक्षर - अनक्षर के भेद से दो प्रकार का है। प्राकृत, संस्कृत, आर्य, म्लेच्छादिक भाषा रूप जो शब्द हैं वे सब अक्षरात्मक हैं। जो इन्द्रियातीत जीवों के शब्द हैं तथा केवली भगवान की जो दिव्य ध्वनि है वह अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक हैं। अभाषात्मक के भी दो भेद हैं - प्रायोगिक और वैशेषिक। प्रायोगिक तो तत्, वितत्, धन, सुधिरादि रूप होते हैं। तत् शब्द उसे कहते हैं जो वीणादि से उत्पन्न होता है। वितत्, शब्द ढ़ाल, नगाड़े आदि के होते हैं। झांझ, करताल आदि से उत्पन्न होने वाले शब्द ध्वनि कहलाते हैं और बांसादि से उत्पन्न हों वे शब्द सुधिर कहलाते हैं। ये समस्त पुद्गलों के स्कंधों मैटर से उत्पन्न होते हैं।[1] जितने भी भाषा, अभाषा रूप शब्द लोक में होते हैं उनका उपादान कारण ये भाषा वर्गणायें हैं तथा इसके शब्द रूप परिणमन् में निमित्त कारण स्थूल स्कंधों का परस्पर मिलना (टकराना) है।[2] जैसे ताली बजाना और तालु हिलाना, वाद्य बजाना, धरती पर पग धरना, पानी का परस्पर धक्का होना, वायु का धक्का दीवार आदि को लगना, मेघों का टकराना आदि। इस तरह अंतरंग, बहिरंग कारणों से शब्द पैदा होते हैं, ये शब्द वहीं सुनाई देते हैं जहाँ तक इनकी भाषा वर्गणायें परस्पर एक दूसरे को शब्दायमान करती हुई जा सकें।[3] यह निमित्त कारण के बल के ऊपर निर्भर है। बहुत जोर से तालु हिलाने पर शब्द दूर तक जा सकेगा। यदि मंदता से हिलायें तो कम दूरी तक ही जा सकेगा। शब्द अमूर्तिक आकाश का गुण कभी नहीं हो सकता क्योंकि अमूर्तिक के गुण अमूर्तिक और मूर्तिक के गुण मूर्तिक होते हैं। यदि शब्द अमूर्तिक होता तो कानों से न सुनाई देता न ही वह किसी से रूक सकता। यदि हम अपने हाथों को मुँह के ऊपर लगाकर बोलें तो हम देखेंगे कि शब्द रुक - रूक कर निकल रहा है। श्लोकवार्तिक में शब्द मूर्तिक है।[4] स्कंध रूप से परिणमन करने वाले पुद्गल ही शब्दादि रूप होते हैं, यही बात प्रमाणित एवं सिद्ध है। इस प्रकार शब्द पुद्गल द्रव्य का पर्याय है।[5]

जैन शास्त्रों में पुद्गल के छह भेद किये हैं उनमें शब्द (साउण्ड) ध्वनि को पुद्गल सूक्ष्म - स्थूल रूप कहा गया है। क्योंकि पुद्गल के इस रूप को आंखों से नहीं देखा जा सकता केवल कर्ण इन्द्रिय से सुना जा सकता है। वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो गया

* एन - 14, चेतकपुरी, ग्वालियर - 474 009 (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि शब्द की उत्पत्ति द्रव्य के परमाणुओं के कम्पन द्वारा होती है।[6] इस विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि हमारे जैनाचार्यों को ध्वनि के सम्बन्ध में बड़ा ही वैज्ञानिक, सुन्दर, सही-सही और पूर्ण ज्ञान था। भौतिक विज्ञान की किसी पुस्तक को यदि आप देखेंगे तो ध्वनि उत्पन्न करने की यही क्रिया लिखी मिलेगी -

1. तारों की झनझनाहट
2. प्लेट या रॉड की झनझनाहट
3. तने हुए परदे की झनझनाहट
4. वायु स्तम्भ के कम्पन से

शब्द या ध्वनि के संबंध में एक बात विशेष रूप से समझने योग्य है- यदि वस्तु के कणों की स्पंदन गति प्रति सेकण्ड की गति से कम है तो कोई शब्द उत्पन्न नहीं होता। स्पंदन की गति जब 16 या 20 प्रति सेकण्ड से बढ़ जाती है तो शब्द सुनाई देने लगता है। जैसे-जैसे स्पंदन गति बढ़ती जाती है, स्वर भी ऊँचा होता जाता है किन्तु स्पंदन गति 20,000 प्रति सेकण्ड हो जाने पर और कभी विशेष अवस्थाओं में 40,000 तक शब्द कर्णगोचर होता है अर्थात् सुनाई पड़ता है। स्पंदन की गति 40,000 प्रति सेकण्ड से अधिक होने पर जो शब्द होता है उसे हमारे कान सुन नहीं सकते। शब्द को कर्णगोचर नाद (अल्ट्रासोनिक) कहा जाता है।

हारमोनियम के अन्दर जो छोटी-छोटी पीतल की पट्टियाँ (रॉड) लगी रहती हैं वे भी इस प्रकार प्रति सेकण्ड भिन्न-भिन्न संख्या में कंपन करती हैं और इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्वरों की सृष्टि होती है। संभाषण के समय हमारे कंठ में स्थित स्नायु लगभग 130 बार प्रति सेकण्ड की गति से झनझनाते हैं, झनझनाहट की यह क्रिया बालकों तथा नारियों के कंठ से अधिक तीव्र होती हैं, इस कारण उनका स्वर पुरुष स्वर से ऊँचा होता है। जब हम संभाषण करते हैं तो वायु में लगभग 10 फीट लम्बी तरंगें उत्पन्न होती हैं। ये तरंगें जब कान के परदों तक पहुँचती हैं तो परदा हिलने लगता है और उसके कम्पन करने से हमारे मस्तिष्क में शब्द का बोध होता है किन्तु जब कर्ण अगोचर शब्द की उत्पत्ति होती है तो वायु में ध्वनि की तरंगें केवल एक इंच अथवा आधा इंच की लम्बाई की होती है। इन सूक्ष्म तरंगों की यह विशेषता होती है कि ये एक ही दिशा में बहुत दूर तक बिना हस्तक्षेप किये चली जाती हैं। न केवल ध्वनि की तरंगें अपितु विद्युत तरंगों की भी यही स्थिति है। इस कारण बी.बी.सी. आदि रेडियो समाचार छोटी लहरों द्वारा ही भेजे जाते हैं। जिस प्रकार आंधी, तूफान बड़े पेड़ों का संहार करते हैं, घास पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इस गुण के कारण कर्ण अगोचर नाद की लहरों का अनेक दिशाओं में उपयोग हुआ है। अल्ट्रा साउण्ड किरणों द्वारा रोगोपचार, रोगों की जाँच आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं।

आजकल पीजों इलेक्ट्रिक ओसोमीटर यंत्र द्वारा कर्ण अगोचर नाद तरंगों को समुद्र की तली में भेजा जाता है। इस तरंगावली के मार्ग में जब कोई बर्फ की चट्टान आ जाती है तो तरंगें उससे टकरा कर वापिस लौट जाती हैं। तरंगों के जाने और लौटने में जो समय लगता है वह एक घड़ी से नाप लिया जाता है। चूंकि समुद्र तल में तरंगों की गति ज्ञात है, गणित करने से चट्टान की दूरी का अनुमान हो जाता है और जहाज खतरों से बचा लिये जाते हैं। इन स्वर लहरों में यदि आदमी अपना हाथ कर दे तो उसके हाथ से रक्त की बूँदें टपकने लगेंगी। एक यंत्र किसी अनाज के खेतों के मध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगाने से उससे निकली हुई तरंगें सब कीड़ों को नष्ट कर देती हैं या बेहोश कर देती हैं। मंदिरों में घण्टा आदि बजाने से उसके क्षेत्र के हानिकारक कीड़े-मकोड़े निश्चेतना की स्थिति में हो जाते हैं। कर्ण अगोचर नाद का उपयोग धातु में झाल लगाने के कार्य में हुआ है। अल्ट्रासोनिक सोल्ड्रिंग द्वारा अल्यूमिनियम के बर्तनों में भी झाल लगाई जा सकती है। शब्द शक्ति से इतना ताप उत्पन्न किया जाता है कि धातु के दो टुकड़े पिघलकर आपस में ही जुड़ जाते हैं। तानसेन की दीपक राग की ऐतिहासिक घटना हम सबके सामने है।

नाद संगीतशास्त्र का प्राण पुरुष है। यद्यपि नाद को नितांत संगीत जातिक नहीं माना जा सकता क्योंकि सम्पूर्ण विश्व नादाधिष्ठित है। जैनाचार्यों ने भगवान ऋषभ को शिव रूप में स्मरण किया।[7] शिव संगीत के आदि गुरु हैं।[8] सच्चिदानंद (सत्+चित्+आनन्द) विभूतियों से सम्पन्न प्रजापति ऋषभ से सर्वप्रथम जिस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है वह शक्ति नाद को उत्पन्न करती है और नाद से बिन्दु की उत्पत्ति होती है। जैन साहित्य में नाद कला का आकार आधे चन्द्रमा के समान है, वह सफेद रंग वाली है, बिन्दु नीले रंग वाला है।[9] नाद की उत्पत्ति ब्रह्म ग्रंथि से होती है। भगवान शंकर नाद तनु हैं, नाद के प्रवक्ता हैं। संगीतोपनिषद् सारोद्धार में वर्णन है कि नाभि में एक कूर्मचक्र है, उसके कंद पर परभिनी है, उसकी नाल में एक यंत्र है, उसमें एक कमल है, उसमें अग्निप्राण की स्थिति है, उससे अग्निवायु संयोग से सिद्ध ध्वनि उत्पन्न होती है, उसी सिद्ध ध्वनि से नाद की उत्पत्ति होती है।[10] ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों नादात्मा हैं। विशुद्ध नाद अनाहतनाद की उपासना पराशक्ति त्रिदेव और ओंकार की उपासना है।

जैन साधुओं ने पुद्गल के सूक्ष्मतम व्यक्तित्व को गहराई से खोजा है। हमारे तीर्थंकर और आचार्यों ने रसायन शास्त्र और भौतिकी के तल पर उसकी स्पष्ट व्याख्यायें की हैं। इस मायने में हम तीर्थंकरों को परमाणु विज्ञानी भी कह सकते हैं। वस्तुतः उन्होंने आत्मा को इतना अनावरित कर दिया कि वे मूर्त/अमूर्त तमाम पदार्थों को युगपत् देख सकते थे। या कहें उन्हें यह आपों-आप दिखाई देने लगते थे, समूचा जैनागम परमाणु विज्ञान से भरा-पड़ा है। आवश्यकता इस बात की है कि बारीकियों को विज्ञान की शब्दावली में दुनिया के सामने प्रस्तुत करें। आने वाली पीढ़ी को अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिये हमें जैन दर्शन के इस पक्ष को बहुत स्पष्टता से सामने लाना होगा। हम पुद्गल का जो स्वरूप जैन धर्म में वर्णित है उसे नई भाषा शैली में वैज्ञानिक अक्षरों में प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं।

हमारा तप क्या है? प्रतिकूल/बाधक परमाणुओं का विरेचन और अनुकूल/साधक परमाणुओं का समन्वयन। आठों कर्म पौद्गलिक हैं। तप पुद्गल के चयापचय से संबंधित हैं। कार्माण वर्गणा की समीचीन समीक्षा से सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यदि टेप पर शब्दांकन होता है और हम चुम्बकीय प्रभाव से उसका विरेचन/क्षरण कर सकते हैं तो क्या कार्मण वर्गणा की स्थिति ऐसी नहीं है।

ऐसे सैकड़ों क्षेत्र और तथ्य हैं जिन्हें विज्ञान के तल पर प्रवर्तित/प्रतिपादित करने की आवश्यकता है। वनस्पति में प्राण होने के तथ्य को डॉ. जगदीशचन्द्र वसु ने आज से लगभग 1 सदी पूर्व दुनिया के सामने रख दिया। जैन धर्म इस तथ्य को हजारों वर्षों से मानता चला आ रहा है। इन/ऐसे प्रमाणों द्वारा ही हम जैनधर्म के आध्यात्मिक निष्कर्षों की पुष्टि कर सकते हैं। क्या यह संभव नहीं है कि हम देश में एक ऐसी सर्व धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पन्न केन्द्रीय प्रयोगशाला स्थापित करें जिसमें जैन समाज के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों को पूरे सुविधा साधन उपलब्ध कराये जायें और फिर उन सारे तथ्यों को जो 'तत्त्वार्थ सूत्र' जैसे ग्रन्थों तथा उसकी टीकाओं से भरे पड़े हैं, पुष्ट किया जाये।

सन्दर्भ

1. **तंत वीणादिक ज्ञेयं विततं पटहा दिकम्**
   धन तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिके विदुः:॥
   ब्रहादक संग्रह टीका, 13, पृ. 51.
2. साक्षर एवं भ वर्ण समूहान्नैव दिनार्थगतिर्जगतिस्मात्। महापुराण, 23/73 एवं
   The Psychogenetic Foundation of Language by G. Revers, Lingua, PP. 318, 1955.
3. **सद्दो संघप्यभवो खंधो परमाणु संगधादो।**
   पट्टेसु तेसु जायदि सददो उप्पादगो णियदो॥आचार्य कुन्दकुन्द पंचास्तिकाय, 79.
4. **प्रोक्ता शब्दा दि मन्नस्तु पुद्गला स्कंध भदत:**
   तथा प्रमाण सद्भावादन्यथा तद्भावत्। वृहद जैन शब्दार्णव, वि.पृ. 540.
5. पंचास्तिकाय टीका ब्र. शीतलप्रसाद, सूरत, पृ. 348.
   (ब) **प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्त स्वयंम्भुवा॥** पाणनि शिक्षा. 3
   (स) **अकार: सर्ववर्णाग्र: प्रकारा परम: शिव:। आघग्रध्येन संयोगादह मित्येवजायते नन्दिकेश्वर काशिका 4.**
6. तत्वार्थ सूत्र, पंचम अध्याय, सूत्र 24, उत्तराध्ययन 28, गाथा 12 - 13.
7. आदिपुराण, जिनसेन, 30
8. श्रीमद् भागवत, 5/31/34.
9. **नादश्चन्द्र समाकारी बिन्दुर्नालसमप्रभ कलारूण समाक्रांतं स्वर्णय: सर्वतोमुख:। 12,** ऋषिमंडल स्तोत्र।
10. संगीतोपनिषत्सारोद्धार, 1/25 - 27, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ोदा। एवं
    E. SAPIR - A study of Phonetic symbosin, PP 61-72., University of California, 1949.

प्राप्त - 5.4.2001

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

JINAMANJARI

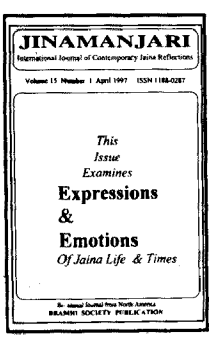

Editor - S.A. Bhuvanendra Kumar
Periodicity - Bi-annual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada-U.S.A.**
Contact - Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
MISSISSAUGA, ANTARIO,
Canada 14z2w5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 14, अंक - 1, 2002, 75 - 86

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आधुनिकतम मस्तिष्क सम्बन्धी खोजें

जैन कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में

■ डॉ. (ब्र.) प्रभा जैन एवं प्रो. एल.सी. जैन *

सारांश

विगत सदी में भौतिक शास्त्र, गणित तथा जीव विज्ञान में हुए आविष्कार एवं खोज से हमने प्रकृति के अनेक रहस्यों को उद्घाटित किया है। साथ ही दक्षिण भारत में विशेषकर षट्खण्डागम एवं कषायप्राभृत ग्रंथों से संबंधित टीकाएँ एवं सार रूप ग्रंथ गोम्मटसार, लब्धिसार की गणितीय टीकाएँ हिन्दी भाषा में अनुवादित होकर सामने लायी गयी हैं। इनकी कर्म सिद्धांत संबंधी सामग्री के परिप्रेक्ष्य में हम विज्ञान की आधुनिक मस्तिष्क सम्बन्धी खोजों पर लगे प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करेंगे।

शताब्दियों तक विचारकों ने मस्तिष्क के संबंध में चिंतन किया कि वह किस प्रकार चेहरों को, गन्धों को, आवाजों को, पहचानता है और किस प्रकार वह सुदूरवर्ती स्मृतियों को संजोकर सामने बुलाता है तथा अन्त:प्रज्ञा युक्त छलांगें मारकर परिणामों पर पहुंच जाता है। यूनान, चीन आदि देशों ने विगत 2000 वर्षों में जो कुछ पाया और खोजा, उससे कहीं बहुत अधिक आश्चर्यजनक उपलब्धि दक्षिण भारत में हो चुकी थी तथा गणित द्वारा आगे विकसित की गई थी।

आज मस्तिष्क विज्ञान की नवीन खोजें जिन्हें कम्प्यूटर के नवीन प्रोग्रामों द्वारा क्रियाशील कृत्रिम मस्तिष्क निषेकों (Cells) द्वारा सहायता मिली है, हमें एक नये सिरे से मस्तिष्क की जानकारी बढ़ाने कि प्रेरणा दे रही हैं। सापेक्षता का आइंस्टाइन का सिद्धान्त एवं मैक्स प्लांक का क्वान्टम सिद्धान्त तंत्रिका विज्ञान (neuro-science) में अंशदान देते हुए यह समझाने का प्रयास प्रारंभ कर रहे हैं कि किस प्रकार मस्तिष्क सुदूर स्मृतियों के परदे दूर कर चेहरों, सुगन्धों और अन्य जटिल रूपों को पहचान सकता है जबकि उत्कृष्ट क्षमता युक्त कम्प्यूटर भी लड़खड़ा जाते हैं। जहां कम्प्यूटर किसी व्यवस्था के अनुसार, विधि विधानानुसार कदम गणना करते चलते हैं, वह रूप मस्तिष्क का नहीं है। हमारा मस्तिष्क अब न्यूरानों (मस्तिष्क-कर्म-वर्गणाओं) का अति गहन रूप से परस्पर संयुक्त मधुमक्खी के छत्तों जैसा निरंतर कार्यरत अंतर्जालि (internet) है, जो लगातार एक दूसरे को विद्युत-रासायनिक संकेत आगे पीछे भेजता हुआ, प्रत्येक नवीन अनुभव के साथ संचार पथों को बदलता चला जाता है। ऐसे व्यस्त बाजार के मध्य जो न्यूरानों की विशाल जालरचना हैं, उसमें ही हमारे विचार, स्मृतियाँ और अवग्रह, ईहा, धारणादि उत्पन्न होते हैं।

मस्तिष्क वैज्ञानिकों को आशा है कि यह नवीन सिद्धान्त मिर्गी या वृद्धावस्था रोग (epilepsy and alzheimer's disease) पर नियंत्रण पाने में सहायक सिद्ध हो सकेगा। मस्तिष्क के नये प्रतिरूप (model) को दो भिन्न विज्ञानों के मेल से क्रांति पूर्ण बनाया जा सकता है - तंत्रिकागत जीव विज्ञान (neuro-biology)

* संचालिका - श्री ब्राह्मी सुन्दरी प्रस्थाश्रम, 21 कंचन विहार, विजयनगर, जबलपुर।
** निदेशक - आचार्य श्री विद्यासागर शोध संस्थान, दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर, 554 सराफा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा कम्प्यूटर विज्ञान। न तो मनोविज्ञान, न ही अकेली कम्प्यूटर की पुरानी संरचना इसमें सफल हो सकी थी क्योंकि उसमें मस्तिष्क की गहरी जानकारी का उपयोग नहीं किया गया था। मस्तिष्क का निर्माण 100,000,00 लाख न्यूरानों द्वारा होता है जिसमें सूक्ष्मतम विद्युत तरंगें संचारित होती हैं और इन न्यूरानों के बीच सूचना संचार में रसायन विज्ञान की भूमिका रहती है। इसके सभी भाग न तो अलग-अलग रूप से, न ही अलग-अलग समय में, वरन् सामग्र रूप में तत्काल युगपत कार्य करते पाये गये हैं। जैसे सत्व की समग्र कर्मवर्गणाएं आस्रवित कर्म वर्गणाओं वाले असंख्यात समय प्रबद्धों से आच्छादित हो नवीन निर्जरा तत्काल देती है, वैसा ही ज्ञानावरणीय प्रकृति का कार्य सम्पादन मस्तिष्क में होता पाया गया है। मस्तिष्क की संरचना में दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय एवं मोहनीय प्रकृति की कर्मवर्गणाओं की अहम् भूमिका होती है, शेष की गौण भूमिकाएं होती हैं। अत: मस्तिष्क गत निषेकों या न्यूरानों के कार्य को समग्र रूप से कार्यरत पेटर्न में समझना उचित होगा। यही पेटर्न समझा सकेगा कि हम क्यों स्नेह करते हैं या हँसते हैं। अभी तक इस रहस्यमय गुत्थी को आधुनिक मस्तिष्क विज्ञान सुलझा नहीं सका है।

प्रयोगशालाओं के मस्तिष्क के प्रतिरूप में (न्यूरल नेटवर्कों में) एक दर्जन से लेकर कई सौ कृत्रिम न्यूरान होते हैं जिन्हें रूढ़िगत डिजिटल कम्प्यूटर द्वारा संचालित किया जाता है। वैसे एक अकेला न्यूरान मस्तिष्क में 10,000 अन्य न्यूरानों से संयुक्त होता है, ताकि सभी न्यूरान एक दूसरे को संकेत प्रेषण करते रहें। प्रतिकृति में भी यही संचार व्यवस्था लागू की जाती है। किन्तु ये प्रतिकृतियाँ खिलौने तक ही सीमित रह जाती हैं। अब शोद्यार्थी ऐसे तंत्रिकाय जालसंरचनाएँ निर्मित कर रहे हैं जो यह प्रदर्शित कर सके कि मस्तिष्क किस प्रकार सामान्य गंधों को पहिचानता है। कुछ ऐसे प्रतिरूप तैयार कर रहे हैं जो यह दिखा सके कि किसी लम्बे समय से खोये मित्र की स्मृति जगा सके। किस प्रकार आस्रवित संकेत आंखों से प्राप्त होकर दृष्ट होते हैं, और किस प्रकार आघात लगने में न्यूरानों का समूह पुनर्व्यवस्थित रूप से संयुक्त होकर कार्य करने लगते हैं।

एक न्यूरान को कम्प्यूटर स्विच की अपेक्षा संकेत प्रेषण में दस लाख गुना अधिक समय लगता है किन्तु मस्तिष्क जाने पहचाने चेहरे को एक सेकेण्ड में पहिचान लेता है। यह इसलिए कि कम्प्यूटर कदम दर कदम चलता है, जब कि मस्तिष्क के न्यूरान्स एक साथ सभी युगपत रूप से समस्या से निपटने जुट जाते हैं।

इस प्रकार चिन्तन के क्षेत्र में शोधार्थियों को कम्प्यूटर एवं तंत्रिका-जीव विज्ञान के मेल से मस्तिष्क सम्बन्धी कार्यप्रणाली का आभास होता जा रहा है। किन्तु कषाय का क्षेत्र अभी भी उनकी समझ के परे हैं। कषाय में न केवल दर्शन मोह वरन् चारित्रमोह सम्बन्धी कार्माणवर्गणाओं की भूमिका होती है। यह मोह प्रकृति स्वयं अनेक उपप्रकृतियों वाली कार्माण वर्गणाओं के रूप में होते हुए नगर सभा को निषेकों रूप में चर्चित करते हैं।

क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले अनेक स्थिति एवं अनुभाग वाली कार्माण वर्गणायें एक समूह बनाकर भूमिका निभाती होंगी जिसे सामूहिक रूप - प्रकृति कहा जा सकता है। साथ ही मिथ्यात्व को मिलाकर दर्शन मोह और चारित्र मोह की भूमिकाएं भी कम्प्यूटर की जाल संरचना में किस प्रकार की जाये यह अभी तक शोध का विषय नहीं बन सका है।

यदि हम प्रिंसिपल थ्योरेटिक एप्रोच अथवा सिद्धान्त - सैद्धान्ती विधा के विषय में विचार करें तो हमें शीर्ष से तल तक की पहुँच की यथा संभव जानकारी ज्ञात हो सकती है। अभी तक कन्स्ट्रक्शन थ्योरेटिक एप्रोच रही है जिसे हम संरचना - सैद्धान्ती विधा कह सकते हैं। इसे तल से शीर्ष तक की पहुँच कहा जाता है। ज्ञान के भेदों में केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म परमाणुओं या निषेकों के क्षय से प्रकट होता है। क्षायिक दर्शन या केवलदर्शन दर्शनावरण कर्म निषेकों के क्षय से प्रकट होता है। इसी प्रकार मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि एवं चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन क्षायोपशमिक भाव होने से क्रमशः अपने कर्म निषेक आवरण के क्षयोपशम द्वारा प्रकट होते हैं। क्षयोपशमिक की प्रक्रिया में अपने प्रतिपक्षी कर्मों के स्पर्द्धकों को उदयाभावी क्षय से, किन्हीं स्पर्द्धकों के उपशम से व किन्हीं स्पर्द्धकों के उदय से जो भाव प्रकट होते हैं उन्हें क्षायोपशामिक भाव कहते हैं। किन्हीं स्पर्द्धकों की मात्रा भी होती है और उसकी शक्ति भी दी गयी होती है। इन्हें वर्ग, वर्गणा तथा गुणहानि की मात्रा और शक्ति से समीकरणों द्वारा कर्म सिद्धान्त से संबंधित किया जाता रहा है। जहाँ संज्ञी या मन सहित की चर्चा आती है उन्हें संज्ञी जीव कहते हैं। संज्ञी या सैनी याने मन सहित पंचेन्द्रिय संज्ञी कहे जाते है जो चारों गतियों में पाये जाते हैं। किन्तु असंज्ञी (या अल्प संज्ञी) एकेन्द्रिय जीव से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तक असंज्ञी होने से तिर्यंच कहे जाते हैं। मन दो प्रकार का होता है - द्रव्य मन जिसे हम मस्तिष्क (Brain) कह सकते हैं तथा भाव मन ज्ञान रूप परिणति को कहा जा सकता है जो मति और श्रुत रूप दिखा सकता है। अतः जैन सिद्धांत के जीव कर्म विज्ञानानुसार हमें कम्प्यूटर के साफ्टवेअर (Software) में कर्म - तंत्रिका निषेकों (Cells) के (न्यूरान) निर्मित जालों में क्षय एवं क्षयोपशम की प्रक्रिया निर्धारित करना होगी जो अपने - अपने यथायोग्य समूहों में कार्य (Function) कर सकें। पुद्गल के विशेष गुण - 5 वर्ण, 5 रस, 2 गंध, 8 स्पर्श के उद्दीपक निषेकों से जब उपरोक्त कर्म - तंत्रिका - निषेकों के सत्व पारस्परिक क्रिया करते हैं तो सत्व के प्रतिसमय परिवर्तन के साथ कुछ तंत्रिका - निषेकों के उदय उदीरणा भूत निर्जरा होने के कारण जीव अपना प्रत्युत्तर (Response) अपनी अपनी यथायोग्य परिणति के अनुसार उत्तेजनशीलता (Irritability) द्वारा प्रदत्त करते हैं। अतः उद्दीपन और उत्तेजनशीलता के सम्बन्ध - समीकरणों से जीव की कर्म - फल चेतना, कर्म चेतना तथा ज्ञान चेतना का प्रमाण (Measure) प्राप्त हो सकता है। जो आस्रवित समयप्रबद्ध तंत्रिका - निषेक के प्रदेश, अनुभाग एवं स्थिति को लेकर उदय, उदीरणादि रूप निर्जरा को प्राप्त होता है, वह उत्तेजनशीलता रूप है। अतः इन प्रकृति, प्रदेश अनुभाग, स्थिति रूप चार न्यास प्रमाण का गहन अध्ययन कम्प्यूटर में Feed किया जाना विशेष महत्वपूर्ण होगा। इसमें स्वमेव कषाय (Emotion) की यांत्रिकी (Mechanics) भी कम्प्यूटर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में समावेशित हो सकेगी, जो अभी तक कम्प्यूटर विज्ञान में विकसित नहीं हो सकी हैं।

कषाय के प्रदर्शन की असफलता के साथ ही साथ, पुरानी विधाओं वाले कम्प्यूटर देखने, सुनने, भाषण को समझने आदि की मस्तिष्क सम्बन्धी क्रियाओं को करने में असफल रहे हैं। मात्र 1.35 किलो ग्राम के इस मस्तिष्क का पिण्ड कृत्रिम रूप से बनाने में शोधार्थी उसकी मौलिकता, एकाग्रता और चेतना का प्रतिरूप बनाने में असफल रहे हैं। केवल शोध में इतना अवश्य हो सकता है कि तंत्रिका-निषेकों के समूह एक साथ, एक ही समय क्रियांवित होकर देखने, सूंघने, सुनने आदि कि क्रियाओं में भूमिका निभाते हैं। तंत्रिका-निषेकों के जाल शोधार्थीयों को सहायक हो सकते हैं कि मस्तिष्क किस प्रकार सूक्ष्म सूचना प्रक्रिया को निभाते हैं। यद्यपि तंत्रिका-निषेकों से देखने सम्बंधी संकेतों को व्यक्तिशः समझना अत्यंत जटिल कार्य है। तंत्रिका-निषेकों (Neurons) को एक साथ क्रिया प्रतिक्रियांवित करना, वह भी असंख्य संख्या समूह रूप में सिद्ध हुए हों, हमें मस्तिष्क के प्रतिरूप बनाने में सफल बना सकता है। प्रथमतः इंद्रिय जन्य संवेदना की ओर बढ़ना होगा तत्पश्चात् कषायों को प्रदर्शित करने, इसी आधार पर, मस्तिष्क के प्रति रूप जटिलतम रूप में निर्मित हो सकेगें। वह समग्रता की भूमिका अभी केवल मस्तिष्क ही निभा सकता है, जहाँ तंत्रिका-निषेक एक साथ, एक ही समय में एक जुट होकर उद्दीपन के प्रति अपनी क्षमता के अनुकूल दायित्व निभाते देखे गये हैं।

★ ★ ★

भूमिका हम तत्वार्थसूत्र को लेकर प्रारंभ करेंगे -

''मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध इत्यनर्थातरम्॥''

मस्तिष्क से यहाँ द्रव्य मन अभिप्रेत है। द्रव्य मन की रचना पौद्गलिक है। इस प्रकार द्रव्य मन की रचना में प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग और स्थिति संभव हो जाती हैं।

मनोयोग और कषाय मिलकर स्मृति नामक मतिज्ञान की रचना में सहायक होते होंगे।

सक्षम स्मरण शक्ति अति प्राचीन काल से सभी सभ्यताओं व संस्कृतियों में लाभदायक सिद्ध हुई है, क्योंकि विद्याओं को सीखने का मूल्य सदैव सर्वोपरि रहा है। याद करने की महत्ता भारत में और भी अधिक आंकी जाती रही जो श्रुत रूप ज्ञान को परम्परागत संस्थाओं द्वारा लिपियों के अभाव में सम्राट अशोक के काल तक चली आई। श्लोकादि गढ़ने की कला में भारतीयों ने श्रुत को अक्षुण्ण रखने की जो क्षमता विकसित की वह विश्व के सभी अभिलेखों की संरक्षण कला के आगे निकल गयी। विदेश में भी मार्कस फेसव क्विन्टिलियन (ई. 35-95) ने वक्ताओं को शिक्षित करने हेतु तीन सरल नियम दिये थे -

1. अच्छी तरह ध्यान दो।
2. अभ्यास करते जाओ।
3. यदि कुछ भी नया सुनो तो उसे अपनी जानकारी के साथ संगत में ले आओ।

यूनान में प्लेटो ने भी मन को मोम की ऐसी टिकिया माना था जिसमें स्मृति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की देन निम्न रूप में थी -

"Let us say that this tablet is a gift of memory, the mother of the Muses; and that when we wish to remember anything which we have heard or thought in our minds, we hold the wax to the perceptions and thoughts, and in that material receive the impression of them as from the seal of a ring; and that we remember and know what is imprinted as long as the image lasts; but when the image is effaced or can not be taken, then we forget and do not know".

इसी प्रकार पतंजलि जैसे कई भारतीय दार्शनिकों ने स्मृति को संस्कार रूप (Impression) में मान्यता दी थी। पतंजलि ने स्मृति को मन के पांच प्रकारों में से एक पर्याय माना, जिसमें शेष पर्यायें सम्यक्ज्ञान, मिथ्याज्ञान, कल्पना (Fancy) एवं निद्रा (रूप) में स्वीकारा।

जैन आगम में निम्नलिखित सामग्री उपलब्ध है :

मनोवर्गणाएं, बंधन, संहनन, संस्थान, अंगोपांग, निर्माण, नामकर्म की वर्गणाएँ, मुख्यत: कार्माण वर्गणाएं, उनकी गति - एक समय में एक प्रदेश या 14 राजुगत प्रदेश (लोकान्तर्गत प्रदेश राशि), पुद्गलकाय बनने में स्पर्श रूक्षत्व गुण के अविभागी प्रतिच्छेद, मतिज्ञानादि के अविभागी प्रतिच्छेद, परमाणु तथा स्कन्धों के गुणों के अविभागी प्रतिच्छेद - यथा: वर्ण, रस, गन्ध तथा आठ प्रकार के स्पर्श, शब्दादि दिये गये होते हैं। पुन: योग और कषाय के संयोग से, अथवा मोह के संयोग से कर्म परमाणुओं का जीव से व्यावहारिक सम्बन्ध या बंध होता है, जिसकी दस अवस्थाएँ होती हैं। असंख्य प्रकार के स्कन्ध होते हैं जो जीव के निमित्त से होने पर कर्म निमित्तिक तथा अन्य निमित्त होने पर पुद्गल निमित्तिक होते हैं। 93 प्रकार के नामकर्म आदि। विशेष विवरण के लिए गोम्मटसारादि ग्रंथ दृष्टव्य हैं।

यूनानी गैलेन (Galen), (प्राय: 130 - 200 ई.) की कल्पना थी कि मन सिर में रहता होगा। अरस्तु (Aristotle) निस्संदेह रूप से मन का स्थान हृदय में मानता था जिसे ठंडा रखने में मस्तिष्क युक्ति संगत माना गया था। 16 वीं सदी तक उसका ग्रंथ De Memoria et Reminiscentia" पश्चिमी विश्व में मान्य रहा। प्राय: 700 वर्ष पश्चात Augustine विद्वान की मान्यता थी, ''भूतकाल स्मृति रूप है, भविष्य आशा रूप और वर्तमान उपयोग रूप है। अथवा, संक्षेप में, वर्तमान ही अस्तित्वशील है अत: वर्तमान में ही भूतकाल वर्तमान स्मृति के रूप में तथा भविष्य वर्तमान आशा रूप में गर्भित रहता है। स्मृति सम्बन्धी वैज्ञानिक खोजें सर फ्रांसेस गाल्टन (ई. 1822 - 1911) द्वारा प्रारंभ की गयी मानी जाती हैं। यह वैज्ञानिक चार्ल्स डारविन का चचेरा भाई था। वह औषधि, खोज, मौसम विज्ञान, मानव उत्पत्ति विज्ञान और वंश विज्ञान में उलझा रहता था। उसकी रूचि इस समस्या में थी कि किस प्रकार लोग वस्तुओं को स्मृत रखते हैं तथा विशेषकर उनकी रूचि मानसिक बिम्ब योजना में थी। उसने जो मित्रों आदि को लेकर प्रयोग किये थे वे 1883 में Inquiries into Human Faculty" नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए। यह अन्तर्निरीक्षण सूचना स्मृति अध्ययन सम्बन्धी थी।

तत्पश्चात् जर्मन चिकित्सक एवं मनोवैज्ञानिक हरमाँ एबिंघोस (1850 - 1909 ई.) ने किसी भी स्मृत अक्रमबद्ध धारा में अनेक प्रकार की सामग्री सम्बन्धी भूल जाने के समय की गणनाएं की थीं। यहाँ से प्रतिधारणा (retention) सम्बन्धी, पुनर्स्मृत कार्य में लगने वाले समय का मात्रा वाचक (परिणाम वाचक) प्रायोगिक अध्ययन प्रारंभ हुआ। तत्सम्बन्धी पुस्तक, "Psychologie des Gedachtniss" 1855 ई. में प्रकाशित हुई। इस प्रकार सीखने तथा स्मृति सम्बन्धी आधुनिक प्रायोगिक, मनोविज्ञान का मात्रा वाचक (quantitative) अध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का महत्व बढ़ता गया। स्मरण रहे कि गोम्मटसारादि ग्रंथों में मात्रावाचक मति आदि ज्ञानों का गणितीय उपक्रम वर्द्धमान महावीर की श्रुत परम्परा में बहुत पहिले ही प्रारंभ हो चुका था। किन्तु रूढ़िगत समाज द्वारा इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया।

अब हम जीव विज्ञान सम्बंधी यांत्रिकीकरण के बारे में चर्चा करेंगे जो स्मृति में उपसेवित हुई है। स्मृति अपनी अंगुलि या दृश्यमान टेबल सदृश कोई वस्तु नहीं है। वह व्यवहार की एक झलक है, वह जो हमारा कर्म है। हम कोई कविता या गीत पढ़ते या सुनते हैं और कई दिनों या वर्षों पश्चात् हमें किन्हीं बिलकुल भिन्न परिस्थितियों में वह याद आ जाता है। इस प्रकार पिछला अनुभव, सुखद अथवा दुखद याद आ जाता है - स्मृत या स्मरण हो जाता है। स्मृति इस प्रकार सीखने तथा पुन:स्मरण के बीच स्थित होती है। तीन भाव (Phase) रूपों में स्मृति का विचार होता है -

1. प्रथम भाव में कोई अनुभव या क्रिया हमारे मस्तिष्क में होती है,
2. द्वितीय माध्य भाव जिसमें प्रथम भाव में होने वाले परिवर्तन समय गुजरते बने रहते हैं।
3. अंतिम भाव में प्रथम भाव द्वारा होने वाला अनुभव या क्रिया प्रभावित होता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस अवधारित करने वाले भाव को engram या स्मृति अनुरेखण कहा गया है, जो बजाये जाने वाली रिकार्डिंग मशीन अथवा प्लेटों के मोम का सांचा न समझ लिया जाये। नि:संदेह, मस्तिष्क के निषेक (Cells) के रूपान्तरण द्वारा अवधारणा की उपलब्धि होती होगी। यह रूपान्तरण क्रिया गहराई से समझ लेना चाहिये। तत्वार्थ सूत्र में इसका चार क्रमित भावों में विवेचन किया गया है : अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

स्मृतियों की झलकियों के चिन्तन में हम स्पष्टत: यादगारों को देखते हैं। उनके साथ ही हमें कषायों से रंजित राग - अनुराग, सुख, दुख, दर्द, क्रोधादि की संवेदनाएं भी प्रकट हुई अनुभव में आती हैं। अत: अनिवार्य रूप से हमें स्मृति मानो अपनी चेतन या स्वजागृति की प्रतिबिम्ब जैसी भासित होती है। किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने प्रायोगिक विश्लेषण द्वारा यह पाया है कि स्मृति का सम्बन्ध चेतना से न होकर बिलकुल स्वतंत्र यांत्रिक परिणमन रूप होता है। चाहे वह मानव में हो अथवा पशुओं में।

आधुनिक स्मृति विज्ञान - (जैन आगम के परिप्रेक्ष्य में)

तंत्रिका - निषेक (neuron) और उसकी क्रिया - प्रथमत: मस्तिष्क द्वारा स्मृति किस प्रकार संगृहीत की जाती होगी, इसके लिए मतिज्ञानावरणीय तंत्रिका उपांग निषेकों (nerve cells) की क्रिया के सम्बन्ध में जानकारी करेंगे। तंत्रिका - निषेकों को न्यूरान्स भी कहते हैं। उनका आकार, विस्तार अनेक प्रकार का होता है। सभी के निषेक - काय (cell - body or trunk) से शाखायें फूटती हैं। इस प्रकार तंत्रिका - निषेक (neuron) की झलक एक वृक्ष जैसी होती है। विद्युत संकेत उसकी केबिल - जैसी शाखाओं पर अनुगमन करते हैं। दो प्रकार की शाखाएं होती है :

ड्रेन्ड्राइट्स (Dendrites) या आवक तंत्रिका तंतु शाखाओं में आने वाले विद्युत संकेत होकर निषेक - काय (cell - body) में पहुँचते हैं। निषेक - काय में उत्पन्न संकेत अन्य तंत्रिका - निषेकों (neurons) की ओर ऐसी शाखाओं से अग्रेषित (अग्रसर) होते हैं जिन्हें जावक तंत्रिका - तन्तु (axon या nerver fibre) कहते हैं। ये तंत्रिका - तन्तु, तंत्रिका निषेक की बाहर की और ले जाने वाली केबिलों के रूप में होते हैं। इनकी लम्बाई काफी अधिक हो सकती है, जैसे कि ऊंट के मस्तिष्क के तंत्रिका - तन्तु। इस प्रकार तंत्रिका - निषेक एक दूसरे से बड़ी - बड़ी दूरियाँ तक जुड़े रहते हैं।

जावक तंत्रिका - तन्तु (axon) के अन्तिक छोर परिपथ (circuit) में स्थित अगले तंत्रिका - निषेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आवक - तंत्रिका - तंतु (dendrites) से संयोग स्थापित करते हैं। इनके मिलाप या संगम स्थान को junction या synapse कहते हैं। संगम - स्थान (synapse), जो कि जावक तंत्रिका - तन्तु (dendrite) के अंत में होता है, ग्राहक आवक - तंत्रिका तन्तु की झिल्ली से समीपी संयोग में रहता है।

जब तंत्रिका - निषेकों के जुड़ाव अन्य तंत्रिका निषेकों (neurons) से होते हैं तभी तंत्रिका परिपथ या जालीदार - काम (neural circuits or networks) की संरचना हो जाती है। ये परिपथ मात्र कोई अटकल पच्चू रूप से जुड़े निषेक समूह नहीं होते हैं। मानवीय अनुमस्तिष्क (cerebellum), में लगभग दस अरब (10,000,000,000) तंत्रिका - निषेक होते हैं। ये तंत्रिका - निषेक पाँच प्रकार के होते हैं, जिनके स्थान अनुमस्तिष्क के अलग - अलग विशेष भागों में होते हैं तथा वे अन्य प्रकार के तंत्रिका - निषेक से भी जुड़े रहते हैं। तंत्रिका जैव - वैज्ञानिकों को लगातार तंत्रिका की संरचना एवं कार्य के बीच सम्बन्धों की खोज में लगा रहना होता है। यथा: नेत्र के तंत्रिका - निषेक एवं अनुमस्तिष्क भी भीतरी त्वचा (cortex) किस प्रकार दृष्टि सम्बन्धी सूचना प्रसारित करती हैं। हो सकता है कि इसमें पशुओं के नाम कर्म सम्बन्धी वर्गणाएं (genes) अपना (genetic code) रूपी नियंत्रण रखती हों।

तंत्रिका - निषेक अपना व्यापार विद्युत संकेतों (signals) द्वारा करते हैं। संकेतों की प्रक्रिया जैव भौतिकी का विषय बन चुका है। जब किसी तंत्रिका - निषेक (neuron) को उद्दीप्त (stimulate) किया जाता है तो उसकी झिल्ली (membrane) में यह संकेत विद्युत - रासायनिक खलबली (अशांति) मचाता है। इससे झिल्ली (membrane) के पार विद्युत विभव (potential) में संक्रमक स्थानीय परिवर्तन होता है। झिल्ली का विभव (potential) शीघ्रता से बढ़ता है जो लगभग वोल्ट (volt) का दशांश होता है। और बाद में वह पूर्ण अवस्था में वापस चला जाता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया1/1000 या 1/10000 सेकेण्ड समय में हो जाती है। इस समय कहा जाता है कि निषेक में कर्म - विभव (अनुभाग या action potential) को दाग दिया (fire किया) है। ऐसे कर्म - अनुभागों (action - potentials) को देखा जा सकता है, जब तंत्रिका - निषेक की सतह पर या उसके भीतर इलेक्ट्राइड्स (विद्युत अग्र - बैटरी के विद्युत छोरों) को रखा जाता है और संवेदनशील विद्युत विस्तारक तथा विभवमापी यंत्रों से उन्हें जोड़ दिया जाता है।

ग्राफिक रिकार्ड में विभव में शीघ्र परिवर्तन 'कील' (spike) के रूप में दिखाई देता है। यह 'स्पाइक' या 'कील' शब्द ''कर्म - अनुभाग'' के लिए दूसरा शब्द है। कर्म अनुभाग अर्थात् action potential, जिसे क्रिया - विभव रूप में अनुवादित किया गया है।

किसी जावक तंत्रिका तन्तु या तंत्रिका अक्ष (axon) के किसी भाग में कर्म - अनुभाग पड़ोसी भाग को उत्तेजित (excite) करता है, जिससे वह दाग देता है, और बदले में यह अगले पड़ोसी भाग को उत्तेजित करता है। इस प्रकार यह संकेत (signal) भाग - भाग पर गमन करता हुआ अंत में जावक तंत्रिका तन्तु (axon) के अंतिम छोर तक पहुँचता है।

वस्तुत: तंत्रिका - संकेत विद्युत धारा नहीं होते हैं जो संचालक केविल में शांति से बहते चले जायें। जावक तंत्रिका तंतु (axon) में से होकर गमन करने वाली वस्तु विद्युत - रासायनिक पदार्थ होती है जो उत्तरोत्तर जावक तंत्रिका तन्तु (axon) के प्रत्येक भाग पर आक्रमण करती है, प्रत्येक बिन्दु पर संकेत पुन: उत्पन्न होता है नये सिरे से, और उसका आकार तथा आयाम (amplitude) हर स्थल पर समान होता है।

इस प्रकार कर्म - अनुभाग (action - potential), इस प्रकार के नियत प्रकार का (stereo typed) ''सर्वास्ति अथवा सर्वनास्ति'' या ''अस्ति अथवा नास्ति'' रूप घटना जैसा होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई निषेक (neuron) जब किसी ''उद्दीपक'' (stimulus) का निमित्त पाता है तो उसकी दागने की दर या तो बढ़ती है या घटती है। किन्तु प्रत्येक व्यक्तिश: संकेत अन्य प्रत्येक संकेत के समान होता है। चूंकि कर्म - अनुभाग (action - potential) समयानुसार अनियमित रूप से बंटे रहते हैं, अत: व्यक्तिश: निषेकों (neurons) की संकेतक बनावटें (patterns) एक दूसरे की पहिचान में न आने वाली होती हैं, जिनकी दी गई परास (range) में स्थित विशेष दागने वाली आवृत्तियाँ (बारंबारतायें) (Frequencies) हुआ करती हैं। लगभग 50 वर्ष पूर्व शेरिंगटन ने एक विशेष तंत्रिका - निषेक (neuron) के विषय में देखा कि उसका महत्व संकेतक बनावटों पर निर्भर नहीं होता किन्तु उन जोड़ों से सम्बन्धित होता है जो दूसरे तंत्रिका - निषेकों को उस तंत्रिका - निषेक से जोड़ते हैं।

इस नियम के अपवाद वे तंत्रिका - निषेक हो सकते हैं जो मियादी (periodic) अथवा भावित (phasic) संकेत उत्पन्न करते हों। वस्तुत: प्राय: सभी तंत्रिका - निषेक समान रूप से दाग क्रिया करते हैं। इस सम्बन्ध में "Biochemistry of Memory" पुस्तक दृष्टव्य है।

जब कर्म - अनुभाग (action - potential) जावक तंत्रिका तन्तु (axon) के अंतिम छोर पर पहुँचता है तो वह तंत्रिका - संगम (synapse) जोड़ से मुठभेड़ (encounters) करता है। तंत्रिका - संगम का पूर्व भाग एक उच्च स्तरीय विशिष्ट संरचना होता है जिसमें रासायनिक पदार्थ, ''न्यूरो ट्रांस्मिटर या तंत्रिका - प्रेषक'' होता है। जावक तंत्रिका तन्तु (axon) के अंत वाले तंत्रिका संकेत उसके विद्युत अनुभाग (potential) को बदल देते हैं। और चूंकि जावक तंत्रिका तन्तु का सिरा विध्रुवीकृत (depolarised) हो जाता है, वह ऐसी नपी - तुली मात्रा में रासायनिक प्रेषक को विमुक्त करता जाता है जो दागने की आवृत्ति के अनुपात में होती है। प्रेषक भी पश्च - तंत्रिका - संगम (post - synaptic) झिल्ली पर क्रिया करता है और संकेत - ग्राहक तंत्रिका - निषेक (neuron) में अनुभाग (potential) परिवर्तन कर देता है।

तंत्रिका संगम जोड़ विभिन्न प्रकार के होते हैं। प्रत्येक में एक लाक्षणिक संप्रेषक (transmitter) का प्रयोग होता है। कुछ तंत्रिका - संगम विद्युतीय रूप से युग्मित (coupled) होती हैं और तंत्रिका - संगम के पूर्व भागांत में विध्रुवीकरण जोड़ के पार फैल जाता है, जबकि कोई रासायनिक संप्रेषणों द्वारा कोई मध्यस्थता नहीं होती है। रासायनिक तथा विद्युतीय तंत्रिका - संगमें (synapses) संकेतों का ''सर्वअस्ति - या - सर्वनास्ति'' (all - or - none) के अंत का बोध देती हैं। इस बिन्दु पर दागीय बारंबारता (frequency) परिवर्तित की जाती है, ऐसी एक विद्युतीय अनुभाग (electric potential) में, जो निष्क्रिय (passive) रूप से पश्च - तंत्रिका - संगम (post - synapse) में फैलता चला जाता है। इस प्रकार हम दूसरे प्रकार के विद्युतीय संकेतों को पाते हैं जिनसे तंत्रिका - निषेकों को निपटना पड़ता है। ये अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

ग्राहक तंत्रिका - निषेकों के आवक - तंत्रिका - तन्तु (dendrite) में तंत्रिका - संगम अनुभाग (potentials) में तीन महत्वपूर्ण गुण होते हैं -

1. प्रत्येक तंत्रिका - संगम संकेत का लाक्षणिक चिन्ह होता है, अनुभाग (potential) या तो उदय (विध्रुवित) होता है अथवा गिरता (अतिध्रुवित) (hyperpolarise) है। जो तंत्रिका - संगमें विध्रुवीकरण करती हैं वे उत्तेजक (+) होती हैं, और जो अतिध्रुवीकरण करती हैं वे अवरोधक (-) (resistent) होती हैं।
2. जावक - तन्तु में सर्वास्ति या सर्वनास्ति दागन (firing) से विलग तंत्रिका - संगमों के अनुभाग अनुक्रम में या क्रमबद्ध (graded) होते हैं; संकेत का मान निर्दिष्ट (prescribed) रेंज में कुछ भी हो सकता है, जो पूर्व - तंत्रिका - संगम जावक - तंत्रिका - तन्तु (presynaptic - axon) में होने वाले विसर्जन (निर्जरन) (discharge) पर निर्भर रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. अपने मूल स्थान बिन्दु से तंत्रिका-संगमों के अनुभाग निष्क्रिय रूप से फैलते हैं, ऐसे जटिल रूप से आयाम (amplitude) में कमी (decaying) करते चलते हैं जो तंत्रिका - निषेक के ठीक माप, आकार और भौतिक संरचना पर निर्भर करती है।

मान लें आप किसी ऐसे स्थान पर तंत्रिका निषेक पर बैठे हैं जहाँ उसका जावक - तंत्रिका - तन्तु का उद्गम स्थल होता है। इस स्थान को जावक - तंत्रिका - तन्तुओं (axon) की चूलिका (hillock) कहते हैं। आपको तंत्रिका - संगम संकेत अन्य तंत्रिका - निषेकों से हजारों जावक - तंत्रिका - तन्तु के द्वारा प्राप्त हो रहे हैं, जिनमें से प्रत्येक किसी न किसी मात्रा में अनुभाग (potential) में ''वृद्धि'' या ''हानि'' का अंशदान करता है। इस चूलिका पर बैठे हुए आपको परिवर्तनों के समग्र को देखना है। यह साधारण योग नहीं होता है। कुछ तंत्रिका - संगमों द्वारा बहुत भारी अंशदान होता है, क्योंकि या तो वे बड़े संकेत देते हैं, अथवा क्योंकि वे पास में स्थित होते हैं। अन्य द्वारा अंशदान थोड़ा हो सकता है क्योंकि वे महीनतम (thinnest) आवक - तंत्रिका - तन्तु (axon) चूलिका पर संकलित अनुभाग किसी सीमांत (threshold) के पार हो जाता है तो जावक - तंत्रिका - तन्तु (axon) द्वारा कीलों (spikes) का विस्फोटन उत्पन्न होता है जो अगले तंत्रिका - संगम तक अनुगमन करता हैं।

यहाँ एक संकलक विस्तारक (summing amplifier) है जो किन्हीं निर्दिष्ट नियमों के अनुसार आने वाले संकेतों का योग निकालता है। तंत्रिका - निषेक (nuron) तंत्रिका - परिपथ का मात्र अवयव (element) नहीं है, वरन् एक उच्च स्तरीय सूक्ष्म साधन (device) है जो विशेष मात्रा में सूचना संसाधित (process) करने में सक्षम है। इस साधन के निर्गत (output) लक्षणों का नियंत्रण अत्यंत जटिल चर अवयवों की राशि द्वारा होता है। इन लक्षणों में कोई भी अधिक समय तक रहने वाला परिवर्तन द्वारा स्मृति का अनुभागीय यंत्रीकरण (potential mechanism) संरचित होता है।

अभी तक तंत्रिकाओं संबन्धी प्राचलों (neuronal parameters) पर पड़ने वाला अनुभव का प्रभाव बहुत थोड़े अंशों में ज्ञात हो सका है। कुछ सिद्धान्त तंत्रिका - संगम की कारगरता (प्रभावकता) में होने वाले परिवर्तन का कारण सीखना (learning) मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि विद्यमान तंत्रिका - संगमों (synapses) का मजबूत या निर्बल होना, मजबूत बनना, अथवा नये संगमों का बनना हो सकता है। इसके समान परिणाम का कारण आपका तंत्रिका तन्तु (dendrite) तल पर तंत्रिका - संगमों का पुनर्वितरण, उत्पत्ति या शाखा ऊगने में या झिल्ली का रासायनिक रूपान्तरण हो सकता है। वस्तुत: तंत्रिका निषेक का तंत्रिका - संगमी शरीर क्रिया विज्ञान सीखने की प्रक्रिया और स्मृति पर गहन प्रकाश डाल सकें।

लघु अवधि स्मृति : कुछ पलों में ही हम सीख या याद कर सकते हैं। जो स्मृति शीघ्र खो जाती है, वह लघु स्मृति होती है जो जानवरों में पाई जाती है। वे तत्व (agents) जो स्मृति में कमी (amnesia) ला देते हैं, वे तंत्रिका निषेकों की सक्रियता को प्रभावित कर देते हैं। विद्युत आघात से भी स्मृति चली जाती है - कुछ समय के लिये। लघु अवधि स्मृति को दीर्घ अवधि स्मृति में बदलने को ''दृढ़ीकरण'' (consolidation) कहते हैं। सिर पर चोट लगने से, अतिकम तापमान और बेहोश करने वाली औषधियाँ (barbiturates) भी विद्युत आघात की भांति लघु अवधि स्मृति को दृढ़ीकृत होने से रोकती हैं। अत: लघु अवधि स्मृति विद्युतीय हो सकती हैं और उनके दृढ़ीकरण में समय लग सकता है ताकि रासायनिक संश्लेषण या उत्पाद तंत्रिका निषेक में हो सके।

लघु अवधि स्मृति का एक दोष - स्थिरीकरण स्मृति हानि (fixation amnesia) है। मस्तिष्क के कुछ भागों (mamillary body और hippocampus) के तंत्रिका - निषेकों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नष्ट होने के कारण यह बीमारी होती है। इसी प्रकार पश्चयामी स्मृति हानि (retrograde amnesia) भी होती है। लघु अवधि स्मृति के जो भी कारण हों इसमें तंत्रिका के स्पंदन या आवेगों (impulse) का लगातार छोटे बंद तंत्रिका परिपथ पर चलना भी हो सकता है। तंत्रिका - संगमों के अनुभागों (potentials) के परिवर्तन भी इसमें कारण हो सकते हों। इन सभी को EEG (Electroencephologram) के अभिलेखों में देखा जाय। इसी प्रकार तत्सम्बन्धी और सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रायोगिक प्रतिबंधन और दीर्घ - अवधि स्मृति (Experimental Conditioning and Long Term Memory) : दीर्घ अवधि वाली स्मृति, सुदृढ़ होने के पश्चात्, क्या लघु अवधि वाली स्मृति की तरह विद्युतीय रहती है? विद्युत आघात (electroconvulsive shocks), विक्षोभ (concussion), या शामक, संज्ञाहारिक, वेदनाहारी (aneasthesia), यदि इतने अधिक गहरे हों कि विद्युतीय नीरवता (silence) हो जाये और दीर्घकाल स्मृति अक्षुण्ण बनी रहे। अत: स्थायी स्मृति विवृत्तीय आवेग (impluses) या विद्युता से उत्पन्न अन्य तंत्रिका निषेक की विद्युतीय अवस्था नहीं है। वस्तुत: यह मान्यता है कि इसमें संरचनात्मक morphological) आकृति विज्ञान अथवा रासायनिक परिवर्तन तंत्रिका - निषेकों में हो जाता है। इसका कारण यह हो सकता है कि (neurons) पर आघात या तंत्रिका - संगमी दनादन (synaptic bombardment) तंत्रिका जोड़ से दागने से स्थायी (durable) परिवर्तन हो जाता है, जिससे तांत्रिक (neuronal) परिपथ पश्च क्रिया के प्रति अधिक सुग्राही (susceptible) या सुप्रभाव्य हो जाता है।

स्मृति सुदृढ़ता (consolidation) पर जो प्रयोग किये गये वे प्रशिक्षण या संस्कार (conditioning) से संबंधित हैं। ये प्रयोग ईवान पेत्रोविच पावलोव (Ivan Petrovich Pavlov) द्वारा मेडिकल अकादमी, सेट पीटर्सबर्ग, रूस में किये गये जिस पर उन्हें 1904 में नोबेल पुरस्कार मिला। उनके प्रयोग कुत्तों के मुंह में लार आने से संबन्धित थे। जब कुत्ता रोटी भोजन करता है तो उसके मुँह से लार टपकती है। यह स्वयमेव होने वाली प्रतिवर्त क्रिया (reflex action) है। इसमें नियमितता और तात्कालिकता एक सहज तंत्रिका परिपथ प्रतिवर्ती चाप (reflux arc) पर आधारित रहती है। जिनके द्वारा आवेश यात्रा करते हैं। इसमें केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र शामिल होता है। (उद्दीपन, जैसे सुई चुभन, द्वारा आवेगों के समूह अनेक संवेदी तंत्रिका तंतुओं द्वारा मेरू रज्जु में जाते हैं, जहाँ से वे दूसरे तंत्रिका तंतुओं को भेज दिये जाते हैं। तथा आवेग प्रेरक तंत्रिका तन्तुओं के एक समूह में नीचे जाते हैं जो पेशियों को सक्रिय करते हैं, जिनके सिकुड़ने से पांव सुई चुभन से उठा लिया जाता है।) यदि दूर से भी रोटी दिखाई जाये तो भी उस प्रतिबन्धित कुत्ते की लार टपकने लगती है। यह आन्तरिक प्रतिवर्त (innate reflex) नहीं है तथा कुत्ते (puppy) में नहीं होता है। कुत्ता लार टकपाने को देख - देख कर कहीं से सीख जाता है। वह रोटी की आशा (expection) में लार नहीं टपकाता, किन्तु वह सीखता है। पहले घंटी बजाकर दरवाजा खोलकर खाना लाया जाता है। खाने को देखकर लार (saliva) टपकना, फिर घंटी को सुनकर भी लार का निकलना। यहाँ घंटी की आवाज को प्रतिबंधित उद्दीपक (conditioned stimulus) कहा जाता है और भोजन (food) को अप्रतिबंधित उद्दीपक (unconditinal stimulus) कहते हैं। इस प्रकार के प्रतिबन्धन (cpnditioning) को चिरसम्मत प्रतिबंधन (classical conditioning) कहते हैं। वेदनादायक उद्दीपक (stimulus) भी इसी प्रकार वेदना देते हैं। कुत्ते को प्रतिबंधित (conditioned) कर लार टपकाने हेतु अप्रतिबंधित उद्दीपक के स्थान पर अप्रतिबंधित उद्दीपक (unconditioned stimulus) को विस्थापित कर प्रतिबंधित उदीदपक (conditioned stimulus) द्वारा पूंछ हिलाना (wagging) आदि कराना और प्रकाश, आवाज, स्पर्श, पिन, बिजली धक्का द्वारा अनेक प्रक्रियाओं द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुत्ते को अनेक प्रकार से प्रतिबंधित किया जा सकता है। यही कर्म बंधन प्रक्रिया का एक स्वरूप कहा जा सकता है।

तथ्य : प्रतिबंधित (conditioned response) का सीखना अत्यंत प्रचलित है, विस्तृत है, और सभी तंत्रिकीय व्यवस्था (neural organisation) का एक मूलभुत गुण प्रतीत होता है। पावलोव ने प्रतिबंधन (conditioning) को पशु और मानव के व्यवहार का सामान्य मिश्रण बतलाया। यह चिरसम्मत प्रतिबंधन (classical conditioning) है। लार टपकना, आंख पुतली का सिकुड़ना आदि ऐसे प्रकार के प्रतिबंधन हैं।

दूसरे प्रकार का प्रतिबंधन है प्रक्रियात्मक प्रतिबंधन (operant conditioning) इसके लिए दंड एवं पारितोषिक के द्वारा पशु को असाधारण व्यवहार सिखलाया जाता है। जैसे, केंचुए की चाल दाहिनी ओर करना सिखाना, तोते को भाषा सिखाना। सर्कस आदि में इसका प्रयोग होता है। अत्यंत भयानक उपलब्धियाँ भी इस प्रणाली प्रतिबन्धन कदमों (systemetic conditioning steps) के द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। ये यांत्रिक होते हैं। जैसे बालक या चिंपैजी भी पर किये गये सीखना जैसे प्रतिबंधन प्रयोग दिखलाते हैं कि तंत्रिकीय यंत्र अस्तित्व में है जो संवेदी - प्रेरक (sensory - motor) की नवीन बनावटें / अभिरचनाएं (patterns) स्थापित कर देती हैं। इस प्रतिबंधन (conditioning) के द्वारा ट्रिगर की जाने वाली संवेदी आश्रय (input) और चुना गया व्यावहारिक (behavioral) उदय (output) के बीज जो जुड़ाव (connections) होते हैं वे अन्य विकल्प प्रेरक प्रोग्रामों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। अत: स्मृति का आधार, प्रतिबंधन के साथ होने वाले संभव तंत्रिकीय परिवर्तन को खोजा जाना चाहिए। इससे सीखने और स्मृति के स्वरूप सम्बन्धी सुराग (clues) प्राप्त होने की आशा है। सीखना और स्मृति के विद्युतीय सहवर्ती पदार्थ (concommitants) तंत्रिका - निषेकों की विद्युतीय सक्रियता भी यथायोग्य (appropriate) उद्दीपकों (stimuli) की जोड़ियों द्वारा प्रतिबंधित की जा सकती है। गलगंड (thalamus) (कशेरूकी के अग्र मस्तिष्क के भाग में एक मुख्य संवेदी समन्वयन भाग) की केन्द्रिक नाभि (central nucleus) की जघन्य बारंबारता वाला उद्दीपन, सतही विभव (potential) या अनुभाग में संक्षिप्त हटाव कर देता है। यदि विद्युत उद्दीपन को आवाज के स्वर (tone) के साथ बारबार जोड़ा जाये तो प्राय: 30 प्रयासों के बाद गलगंड के निषेक मात्र आवाज के प्रति दायित्वशील हो जाते हैं। इस प्रकार के तंत्रिकीय प्रतिबंधन के अन्य प्रयोग और उदाहरण हैं। यथा : खरगोश को प्रकाश द्वारा पंजा उठवा देना। दृश्यमान मस्तिष्क प्रभाग में (visual cortex) के कुछ भागों में ऋणात्मक विद्युत आवेश देने पर, विद्युत उद्दीपन से प्राप्त अनुभव के धारण को अवरूद्ध (bolck) किया जा सकता है। मस्तिष्क के किसी क्षेत्र के तंत्रिका - निषेकों (nurons) में अन्य दीर्घकालीन अनुभागीय परिवर्तन तथा उत्तेजक एवं रोधक (excitatory & inhibitory) पश्च तंत्रिकीय जोड़ अनुभाग का मिला जुला प्रतिनिधित्व विद्युतीय संकेत या धीमी तरंगें करती प्रतीत हुई है। ये प्रतिबंधन के समय प्राप्त भीतरी मस्तिष्क की लय या ताल (rhythm) रूप या तुल्यकालिकता (synchrony) की तलों (levels) में होने वाले परिवर्तनों के रूप में परीक्षित किये गये हैं। प्रतिबंधित अनुक्रियाओं की स्थापना से जुड़े अनुभाग में भी इसी प्रकार के लाक्षणिक परिवर्तन देखे गये हैं।

तंत्रिका के जोड़ों का निर्माण : दीर्घ अवधि वाली स्मृति यांत्रिकी और तंत्रिका निषेकों के बीच नयी संरचनामय जोड़ों पर विचार करें। यद्यपि नाम कर्म निषेकों (genes) द्वारा तंत्रिका मंडल का समग्र संगठन विवेचित होता है, किन्तु विभिन्न जातियों के लिए यह भिन्न - भिन्न होता है।

तंत्रिका जोड़ों के सम्बन्ध में दो भिन्न मत है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1. संपूर्ण तंत्रिका जाल कार्य एक ऐसी समान विभव वाली अभिन्न प्रथमत: प्रणाली है जिसमें गतिशील संरचनाएं दूर स्थित बिन्दुओं को सामान्य कार्य हेतु जोड़ती है। ये संरचनाएं जटिल, लचीली और स्व - नियमित होती हैं।
2. तंत्रिका जाल पूर्व नियोजित रूप से तार संबंधित एवं निश्चायक लक्षण वाला होता है। जब इनके तंत्रिका संगमों में परिवर्तन होते हैं तो उन पर दीर्घ अवधि वाली स्मृति आश्रित होती है।

मस्तिष्क के निषेक विभाजित नहीं होते है किन्तु वे नई शाखाओं में उगते हैं। ज्यों - ज्यों ये उम्र पाकर बढ़ते हैं त्यों - त्यों सीखने की क्षमता, नई योग्यताएं विकसित होती हैं। यदि निरन्तर शाखा उत्पादन एवं तंत्रिका - निषेकों में पारस्परिक जोड़ स्मृति की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, तो उनका सम्बन्ध अनुभव (experience) से होना चाहिये। प्रयोगों के आधार पर जोड़ों की क्षमता अनुभव के अनुसार बढ़ती देखी गयी है।

मस्तिष्क में ग्लिया (glia) नामक अनेक तंत्रिका - बंध निषेक होते हैं। ग्लिया के आव्यूह बनते हैं जिनमें तंत्रिका - निषेक जुड़े होते हैं। ये तंत्रिका - निषेक शाखाओं को सही जोड़ों को बनाने में गाइड (निदेशक) का कार्य करते हैं - ऐसा प्रस्तावित है। ग्लिया विभाजित होते हैं किन्तु तंत्रिका - निषेक नहीं। विद्युत क्रियाशीलता जो तंत्रिका निषेक में होती है वह ग्लिया के चारों ओर उद्दीपन कर ग्लिया की संख्या बढ़ाकर कुछ जोड़ बढ़ा सकती है। यह मात्र अनुमान है।

स्मृति का स्थानीकरण (Localisation of memory) : यह न जानते हुए भी कि स्मृति के चिन्ह क्या हैं? क्या हम कह सकते हैं कि वे कहाँ हैं। पशु के संवेदी (sensory) और प्रेरक (motor) कार्यों को प्रमस्तिष्क वल्कुट के चिन्हित भागों में रहने वाले संवेदी तंत्रिका - निषेक नियंत्रित करते हैं। दृष्टि से संबंधित निषेक संवेदी आस्रय, जैसे आकार, वर्ण, गमन आदि को विश्लेषित करते हैं। और वे स्तम्भों और पंक्तियों में व्यवस्थित प्रणाली में रहते हैं। मानवीय वल्कुट के संवेदी एवं प्रेरक व्यवहार के सुनिश्चित क्षेत्र में दृष्टव्य हैं। भाषण की स्मृति का सम्बन्ध होने से उस स्थान से सम्बन्धित है। उसका स्थान दायें मस्तिष्क में होता है। थेलेमस में ट्यूमर वालों को विशेष भाषण दोष भी देखा गया है।

स्मृति का जीव रसायन : जब तंत्रिका निषेकों की विद्युतीय क्रियाशीलता बढ़ती है तब RNA (Ribonuclieic Acid) और प्रोटीन में वृद्धि होती है। जिस प्रकार DNA या उसके RNA अनुलेखन की मूल धारा के रूप में प्रोटीनों की संरचना आनुवांशिक कूटित (genetic coded) हो जाती है ठीक उसी प्रकार स्मृति संभवत: विशेष प्रकार के आर.एन.ए. या RNA रूप में कूटित (coded) होती हो। ऐसा कुछ व्यक्तियों का मत है कि RNA की मूल - धारा का निश्चय तंत्रिका - निषेकों की विद्युतीय क्रियाशीलता से होता है। RNA का सूची वेध (injection) वृद्धों को देने पर स्मृति बढ़ती है। इससे स्मृति और भाषा - व्यवहार में सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

प्राप्त - 9.5.2001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

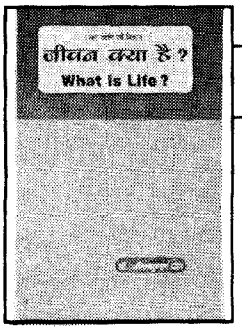

जैन धर्म में जीवन : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

कृति - **जीवन क्या है ?**
लेखक - **डॉ. अनिलकुमार जैन, अहमदाबाद**
प्रकाशक - **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर**
संस्करण - **प्रथम, वर्ष 2002, आकार - डिमाई, पृष्ठ - 102 + XIV, मूल्य - रु. 50/-**
समीक्षक - **श्री सूरजमल जैन बोबरा,** 9/2, स्नेहलतागंज, इन्दौर - 452 015

डॉ. अनिलकुमार जैन शोधपरक कई आलेख लिख चुके हैं। उनकी खोजी दृष्टि ने दर्शन से जुड़े कई वैज्ञानिक लेख लिखे हैं, यह पुस्तिका उन्हीं का संकलन है। सरल भाषा में, वैज्ञानिक आधार के दार्शनिक विषय वस्तुओं को पढ़ना अत्यन्त सुखद है।

पुस्तकें बहुधा विद्वानों के लिये लिखी जाती हैं, किन्तु मुझे लगता है कि यह पुस्तक विद्वानों के साथ जिज्ञासुओं की भी आवश्यकता पूरी करेगी।

श्रमण जैन चिंतन के दो मुख्य आधार हैं। पहला आधार उसकी दार्शनिक पीठिका व दूसरा आधार उसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण। चूंकि आध्यात्म तथा जीवन की विशुद्ध अवस्था की प्राप्ति का लक्ष्य इस धारा में सर्वोपरि है अतः दार्शनिक पीठिका पर आचार्यों और विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है और कभी कभी ऐसा लगने लगता है कि इस पर चलना केवल त्यागियों के लिये ही संभव है या उसको समझना केवल विद्वानों का काम है। किन्तु गत दो शताब्दियों के वैज्ञानिक शोध कार्यों ने इस धारणा में बदलाव लाया है। न्यूटन के सापेक्षवाद तथा वसु के वनस्पति में भी प्राण की खोज ने यह संकेत दिया है कि जैन चिन्तन ने अपने वैज्ञानिक सोच के आधार पर ऐसी अवधारणाओं को अपने आगमों से संजो रखा है जिस पर शोध करने से कई अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं।

सृष्टि की निरंतरता का सिद्धान्त भी अब स्वीकार किया जाने लगा है और जब इसे पूर्णतः स्वीकार कर लिया जायेगा, विश्व से धार्मिक संघर्ष समाप्त हो जायेगा। सृष्टि को यदि कोई तीसरी शक्ति बनाने वाली नहीं रहेगी तो तेरा भगवान और मेरा भगवान का द्वन्द समाप्त हो जायेगा।

जीवन विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने बहुत अधिक शोध किया है। तो प्रश्न यह पैदा होता है कि जो निष्कर्ष इन वैज्ञानिकों ने निकाले हैं, जैन चिन्तन उस बारे में क्या कहता है? डॉ. अनिलकुमार ने अपनी पुस्तक में इसी प्रश्न का उत्तर ढूंढने का, वस्तुस्थिति को पहचानने का प्रयत्न किया है - उन्होंने वैज्ञानिक प्ररूपणाओं के आधार पर कहा है - **'विज्ञान में जीव के जिन लक्षणों का वर्णन किया गया है उसका वर्णन जैन दर्शन में भी किया गया है'।** इन प्ररूपणाओं से रूबरू होना प्रत्येक पाठक को सम्मोहित करेगा।

सूक्ष्म जीवों की जैन दर्शन में स्थिति पर विचार करते हुए अनिलजी ने बहुत ही महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं। साधारण जीवन में इन वैज्ञानिक खोजों के बारे में हमें बहुत कुछ पता नहीं होता है। हम धार्मिक पाठ करते हुए त्रस व स्थावर के सम्बन्ध में पढ़ते हैं, बोलते हैं, किन्तु हम उस पर गहराई से विचार नहीं कर पाते। यह पुस्तक हमारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन अवधारणाओं में छिपी वैज्ञानिकता को उजागर करती है।

डॉ. अनिलकुमार ने अध्याय 6 में कोशिका, वायरस तथा निगोदिया जीवों की तुलना की है। कुछ चित्र भी दिये हैं। यह निर्णय निकाला है कि कोशिका तथा वायरस निगोदिया जीव हैं। निगोदिया के बारे में और अधिक स्पष्ट चित्र विकसित होना चाहिये।

'कर्म सिद्धान्त' व 'आत्मा' जैन दर्शन का वह सिद्धान्त है जिस पर सभी भारतीय दर्शन विश्वास करते हैं। जैनेटिकल इंजीनियरिंग ने ऐसी अवधारणाएँ प्रतिपादित की हैं जिन्हें हम जैन दर्शन के अनुकूल पाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इस तथ्य को जनसुलभ किया गया है।

सम्मूर्च्छन पर भी श्री जैन ने खोजपरक संदर्भ जुटाये हैं। प्रत्येक वह व्यक्ति जिसे जैन दर्शन पर विश्वास है उसे तो अवश्य इस पुस्तक पर विश्वास जमेगा - अन्य भी इसके निष्कर्षों को सहजता से नकार नहीं पायेंगे। जीवन क्या है? इस पर सोच तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक हम उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य की कसौटी पर सारे परिवर्तनों को कस नहीं लेते। इस पुस्तक की विषय वस्तु को समझने के लिये हमें जैन दर्शन को भी उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझ लेना होगा। भले ही उसके लिये हमें 'नय चक्र' को समझना पड़े। देखें डॉ. अनिलकुमार हमारी इस दृष्टि से क्या मदद करते हैं।

एक बात पर हमें अवश्य ध्यान देना होगा कि जैन चिन्तन में दर्शन व विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। योग और तपस्या ने साधुओं के शरीर को विज्ञानशाला और ज्ञान के विभिन्न आयामों की उपलब्धि ने उसे अवधिज्ञानी बना दिया था। यही वह शक्ति है जिसने इतने सूक्ष्म आब्जर्वेशन को संभव बनाया।

कई जैन वैज्ञानिक धारणाएँ अभी भी विश्लेषण का इन्तजार कर रही हैं। भाई अनिलजी को बहुत धन्यवाद कि उन्होंने इस बन्द खजाने पर दस्तक दी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ को इतने उपयोगी प्रकाशन को कम दाम में उपलब्ध कराने के लिये शुभकामना।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के 2 अन्य नवीन प्रकाशन

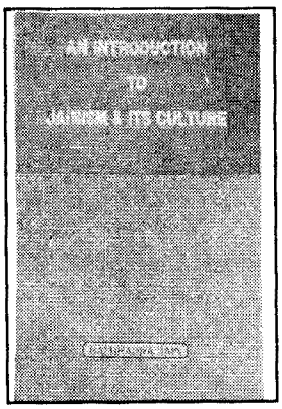

AN INTRODUCTION TO
JAINISM & ITS CULTURE
By Pt. Balbhadra Jain
Rs. 100=00

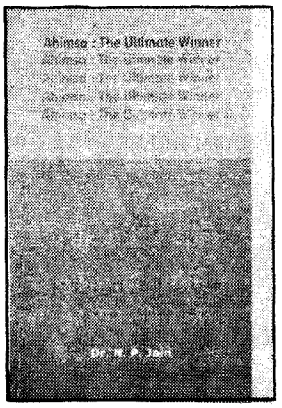

AHIMSA
THE ULTIMATE WINNER
By Dr. N. P. Jain
Rs. 200=00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान महावीर : जीवन एवं दर्शन

राष्ट्रीय संगोष्ठी – इन्दौर, 24 – 25 फरवरी 2002

■ सूरजमल बोबरा*

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन से सम्बद्ध दिगम्बर जैन महिला संगठन इन्दौर द्वारा देवी अहिल्या विश्वविद्यालय - इन्दौर, अ. भा. दि. जैन महिला संगठन, दिगम्बर जैन समाज - इन्दौर, गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ - हस्तिनापुर एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के सहयोग से **'भगवान महावीर : जीवन एवं दर्शन'** शीर्षक द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 24 - 25 फरवरी 2002 को इन्दौर प्रीमियर कोआपरेटिव बैंक लि., महारानी रोड़, इन्दौर के भव्य सभागृह में आयोजित की गई। संगोष्ठी के उद्घाटन एवं समापन सत्रों के अतिरिक्त सम्पन्न **'भ्रूण हत्या एवं उसके दुष्प्रभाव'**, **'भगवान महावीर एवं जन्मभूमि कुण्डलपुर'**, **'जैन इतिहास के उपेक्षित पहलू'**, तथा **'जैनधर्म की वैज्ञानिकता'** शीर्षक चार सत्रों में 40 वक्ताओं ने अपने आलेखों का वाचन किया जिसमें 88 विद्वान्, नेतागण सम्मिलित हुए। **श्रीमती सुमन जैन** की अध्यक्षता एवं **सूरजमल बोबरा** के महामंत्रित्व में गठित आयोजन समिति ने सम्पूर्ण कार्यक्रम की प्रभावी संयोजना की। संगोष्ठी के संयोजक एवं प्रमुख परामर्शदाता कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद सचिव **डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर** थे।

उद्घाटन सत्र में मंच का दृश्य

केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास राज्य मंत्री **श्रीमती सुमित्रा महाजन** के मुख्य आतिथ्य तथा **न्यायमूर्ति श्री न. के. जैन,** म.प्र. उच्च न्यायालय की अध्यक्षता में सम्पन्न उद्घाटन सत्र में विशिष्ट अति थ के रूप में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पूर्व राजदूत **डॉ. एन. पी. जैन** उपस्थित थे। इस सत्र में श्रीमती सुमन जैन - इन्दौर, प्रो. एस. के. बंडी - इन्दौर, श्रीमती आशा जैन - दिल्ली, इंजी. जैन श्री कैलाश वेद - इन्दौर, श्री निर्मल जैन - सतना एवं डॉ. शेखरचन्द जैन - अहमदाबाद ने आयोजक संस्थाओं का परिचय दिया। श्रीमती मीना विनायक्या ने मंचासीन अतिथियों का परिचय तथा अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्य श्री सूरजमल बोबरा ने संगोष्ठी की पृष्ठभूमि एवं आगामी सत्रों की आयोजना पर प्रकाश हाला।

संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए श्रीमती सुमित्रा महाजन ने कहा कि यदि देश की समस्त स्त्रियाँ सीता बन जायें तो देश के पुरुष स्वयं ही राम बन जायेंगे। आज आवश्यकता परम्पराओं को तोड़ने की नहीं वरन् आवश्यकतानुसार जोड़ने की है। उन्होंने संस्कार निर्माण पर विशेष बल दिया। अपने विषय को स्पष्ट करने हेतु उन्होंने अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के आशीर्वाद सहित पधारीं संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहनों (कु.) आस्थाजी एवं (कु.) चन्द्रिकाजी ने महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर की विशाल आमंत्रण पत्रिका का विमोचन मुख्य अतिथि के हाथों कराया। साथ ही अतिथियों को कुण्डलपुर के राजकुमार - महावीर का चित्र भी समर्पित किया।

मंचासीन संगोष्ठी के संरक्षक श्री दिग्विजयसिंह जैन ने **गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर** के इन्दौर केन्द्र के विकास हेतु सुदामानगर में एक भूखण्ड के दान की घोषणा की । एतदर्थ दिगम्बर जैन समाज के अध्यक्ष श्री हीरालालजी झाँझरी द्वारा श्री दिग्विजयसिंह जैन का पुष्पहार एवं श्रीफल समर्पित कर सम्मान किया।

इस अवसर पर ऋषभ देशना के फरवरी - 2002 अंक, संगोष्ठी में पढ़े जाने वाले आलेखों की सारांश पुस्तिका तथा डॉ. एन. पी. जैन द्वारा लिखित एवं **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर** द्वारा प्रकाशित पुस्तक - **Ahimsa-The Ultimate Winner** का विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। सत्र का संचालन अर्हत् वचन के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर ने किया एवं आभार माना महिला संगठन इन्दौर की वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्रीमती लीला जैन ने।

इसी अवसर पर जैन इतिहास के दुर्लभ चित्रों की एक भव्य प्रदर्शनी का आयोजन श्री सूरजमल बोबरा के सौजन्य से किया गया। प्रदर्शनी को दर्शकों ने रूचिपूर्वक देखकर सराहा। प्रदर्शनी में प्रदर्शित सामग्री का परिचय देने वाला फोल्डर भी निकाला गया।

भ्रूण हत्या निषेध आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में भ्रूण हत्या न करने एवं न प्रेरणा देने वाले 26 प्रख्यात चिकित्सकों का सम्मान करने के साथ ही 2600 महिलाओं द्वारा भरे गये संकल्प पत्र आन्दोलन की प्रेरिका पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहनों को समर्पित किये गये।

संगोष्ठी में विशेष रूप से पधारे **Jain Academic Foundation of North America (JAFNA)** के नवनिर्वाचित अध्यक्ष **डॉ. दिलीप बोबरा** ने डॉ. अनुपम जैन के प्रधान सम्पादकत्व में भगवान महावीर के जीवन के सभी पहलुओं पर एक प्रामाणिक पुस्तक के सृजन एवं प्रकाशन की घोषणा की। इसमें गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ - हस्तिनापुर, तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ एवं अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन में से प्रत्येक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने 25% अंशदान देने की घोषणा की।

संगोष्ठी में प्रो. पारसमल अग्रवाल (ओक्लेहोमा - अमेरिका), इंजीनियर श्री अभय जैन (अमेरिका), डॉ. सविता इनामदार (अध्यक्ष - म.प्र. महिला आयोग), सुश्री राधा बहन एवं पुष्पा बहन (कस्तूरबा ग्राम ट्रस्ट, इन्दौर), पं. शिवचरनलाल जैन (अध्यक्ष - तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ), डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' (अध्यक्ष - अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद), प्रो. ए. ए. अब्बासी (पूर्व कुलपति), प्रो. नरेन्द्र धाकड़ (प्राचार्य - होल्कर विज्ञान महाविद्यालय), श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल (अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ), श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल (राष्ट्रीय अध्यक्ष - दि. जैन महासमिति), श्री निर्मलकुमार सेठी (राष्ट्रीय अध्यक्ष - दि. जैन महासभा), श्री माणिकचन्द पाटनी (राष्ट्रीय महामंत्री - दि. जैन महासमिति), पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी आदि महानुभावों की उपस्थिति एवं उद्‌बोधन विशेष उल्लेखनीय रहे।

विद्वत् महासंघ के कार्याध्यक्ष एवं तीर्थंकर वाणी के सम्पादक डॉ. शेखरचन्द जैन - अहमदाबाद ने संगोष्ठी की अनुशंसा में अपने हृदयोद्‌गार प्रस्तुत करते हुए कहा -

1. भगवान महावीर की जन्मभूमि नालन्दा जिले का कुण्डलपुर ही है, इसका सबको मिलकर विकास करना चाहिये।
2. संगोष्ठी में अपेक्षतया कम वक्ताओं को आमंत्रित करना चाहिये जिससे प्रत्येक वक्ता को अधिक समय दिया जा सके।
3. भ्रूण हत्या के सत्र के शोध पत्रों में शोधात्मक सामग्री की न्यूनता थी, किन्तु केन्द्रीय मंत्री श्रीमती सुमित्रा महाजनजी का लेख अत्यन्त गम्भीर एवं शोधपूर्ण था।
4. शेष तीनों सत्र की सामग्री अत्यन्त मूल्यवान, शोधपूर्ण एवं सारगर्भित रही, इससे समागत विद्वानों के ज्ञान की अभिवृद्धि हुई।
5. संगोष्ठी के आयोजकों ने आवास, भोजन, सभागार, साहित्य आदि की सुन्दर व्यवस्था की है, एतदर्थ वे बधाई के पात्र हैं।
6. महिला संगठन की बहनों का समर्पण विशेषत: श्रीमती सुमन जैन की लगन एवं डॉ. अनुपम जैन का सक्षम, सबल सहयोग एवं मार्गदर्शन स्तुत्य है। इन दोनों की युति ने संगोष्ठी को बहुत ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं, सभी को बधाई।

समापन सत्र में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं विद्वत् महासंघ द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित **डॉ. अनिलकुमार जैन - अहमदाबाद** की कृति **'जीवन क्या है?'** का विमोचन करने के उपरान्त (देखें समीक्षा पृष्ठ 87 - 88) अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्राचार्य प्रो. धाकड़ ने कहा कि धर्म का अध्ययन ज्ञान के लिये होना चाहिये, केवल पुण्य के लिये नहीं। कण - कण को जोड़ना ही जीवन है एवं यही धर्म है। साथ ही कण - कण को तोड़ना ही मृत्यु। अत: हमें परस्पर लोगों को जोड़ने वाले ज्ञानवर्द्धक कार्यक्रम निरन्तर आयोजित करना चाहिये। आपने सफल संगोष्ठी के आयोजन हेतु बधाई देते हुए समागत समस्त विद्वानों का सम्मान किया एवं अगली संगोष्ठी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय के सभागृह में आयोजित करने का प्रस्ताव रखा, जिसका करतल ध्वनि से स्वागत किया गया।

* महामंत्री - आयोजन समिति
9/2, स्नेहलतागंज, श्रम शिविर के पीछे,
इन्दौर - 452 002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर जन्मभूमि पर अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता 2002

परमपूज्य, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित **तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर** द्वारा एक अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता आयोजित की जा रही है। निबंध प्रतियोगिता का विषय है - **"भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डलपुर (नालंदा) या वैशाली? - दिगम्बर जैन आगम के परिप्रेक्ष्य में"।**

निबंध प्रतियोगिता के नियम निम्नानुसार रहेंगे -

1. प्रतियोगिता समस्त आयु वर्ग के बालक/बालिका अथवा महिला/पुरुष के लिये खुली है। जैन या जैनेतर कोई भी सम्मिलित हो सकते हैं?
2. निबंध कम से कम 4 पेज (फुल स्केप कागज के) में होना चाहिये।
3. निबंध टंकित अथवा सुवाच्य अक्षरों में पृष्ठ के एक ओर ही लिखा हुआ होना आवश्यक है।
4. प्रस्तुत विषय पर अपना पक्ष ठोस आधार पर पुष्ट प्रमाणों सहित प्रतिपादित करने का प्रयास करें। समस्त सन्दर्भ लेख के अन्त में देवें।
5. निबंध भेजने की अंतिम तिथि **30 जून 2002** निश्चित की गई है। निर्धारित तिथि के पश्चात् प्राप्त होने वाले निबंध प्रतियोगिता में सम्मिलित करना संभव नहीं होगा।
6. प्राप्त निबंधों का मूल्यांकन प्रतिष्ठित विद्वानों के दल द्वारा किया जाकर प्रथम, द्वितीय व तृतीय पुरस्कार स्थान प्राप्त करने वाले प्रतियोगीगणों को क्रमशः रु. 5000/-, 3000/- व 2000/- नगद पुरस्कार दिया जायेगा। सांत्वना पुरस्कारों की भी व्यवस्था है।
7. महासंघ द्वारा गठित निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम व सर्वमान्य होगा।
8. प्रतियोगिता के विषय के नियमों को संशोधित/परिवर्तित/परिवर्द्धित करने अथवा स्थगित करने एवं अन्य समस्त विषयों में महासंघ के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम एवं बंधनकारी होगा।
9. निबंध के मुखपृष्ठ पर प्रतियोगी का पूरा नाम एवं पता अंकित किया जाना चाहिये। निबंध संयोजक के पते पर इन्दौर ही भेजे जाना चाहिये।

संयोजकद्वय

जयसेन जैन
201, अमित अपार्टमेन्ट,
1/1, पारसी मोहल्ला, छावनी,
इन्दौर - 452001 (म.प्र.)
फोन : 0731 - 700020

डॉ. अभयप्रकाश जैन
एन - 14, चेतकपुरी,
ग्वालियर - 474009 (म.प्र.)
फोन : 0751 - 324392

श्री डालचन्दजी जैन की धर्मपत्नी का दु:खद निधन

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अनन्य सहयोगी, पूर्व सांसद एवं म. प्र. कांग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष श्री डालचन्दजी जैन, सागर की धर्मपत्नी श्रीमती सुधारानी जैन, सागर का आकस्मिक निधन 22 जनवरी 2002 को इन्दौर में हृदयाघात से हो गया।

29 जून 1932 को जबलपुर में जन्मीं श्रीमती जैन अनेक धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं की अध्यक्ष एवं सरंक्षक थीं। इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, हांगकांग, सिंगापुर, कुवैत, काहिरा, दुबई आदि अनेक देशों की यात्रायें कर चुकीं श्रीमती जैन अपने पीछे 2 पुत्र एवं 6 पुत्रियों का भरापूरा परिवार छोड़ गईं।

ज्ञानपीठ परिवार की दिवंगत आत्मा के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रथम उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2000

समर्पण समारोह, दिल्ली, 6 जनवरी 2002

■ हंसकुमार जैन*

प्राचीन जैन साहित्य, संस्कृति के संरक्षण एवं सराक बन्धुओं के उत्थान हेतु सतत सचेष्ट परमपूज्य **उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के भाव से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा अप्रैल 2000 में उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार की स्थापना की गई। पुरस्कार के अन्तर्गत जैन साहित्य, संस्कृति या समाज की सेवा करने वाले व्यक्ति/संस्था को प्रतिवर्ष रु. 1,00,000/- की राशि एवं रजत प्रशस्ति पत्र, शाल, श्रीफल से सम्मानित करने का निश्चय किया गया।

साहू रमेशचन्द्रजी जैन को प्रशस्ति प्रदान करते हुए डॉ. सिंघवी एवं एवं श्री निर्मलकुमारजी सेठी पुरस्कार राशि के चेक के साथ ज्ञानपीठ के मानद निदेशक श्री दिनेश मिश्र

विधिपूर्वक गठित निर्णायक मंडल की सर्वसम्मत अनुशंसा के आधार पर प्रथम पुरस्कार अनुपलब्ध जैन साहित्य के उत्कृष्ट प्रकाशन कार्य हेतु भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली को देने का निश्चय किया गया। मई 2001 में की गई घोषणा के अनुरूप यह पुरस्कार चिन्मय मिशन आडियोरियम, नई दिल्ली में 6 जनवरी 2002 को पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ससंघ मंगल सान्निध्य में भव्यता पूर्वक बुद्धिजीवियों, समाजसेवियों एवं जैन विद्या के अध्येताओं की उपस्थिति में समर्पित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि **केन्द्रीय कृषि मंत्री श्री अजितसिंहजी** एवं प्रमुख अतिथि प्रख्यात विधिवेत्ता, **सांसद डॉ लक्ष्मीमल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंघवी थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष **श्री निर्मलकुमारजी सेठी** ने की।

संघस्थ ब्र. बहन अनीताजी के मंगलाचरण के पश्चात् श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ के महामंत्री हंसकुमार जैन, मेरठ ने स्वागत भाषण एवं संस्था परिचय दिया। संस्थान के अध्यक्ष डॉ. नलिन के. शास्त्री, कुलसचिव - बी. आर. अम्बेडकर केन्द्रीय वि. वि., लखनऊ ने प्रशस्ति वाचन किया एवं पुरस्कार संयोजक डॉ. अनुपम जैन द्वारा पुरस्कार योजना का विस्तृत परिचय दिया गया। ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी साहू श्री रमेशचन्दजी जैन ने श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा प्रदत्त इस पुरस्कार के माध्यम से ज्ञानपीठ की सेवाओं का मूल्यांकन करने हेतु आभार माना। आपने अपने उद्‌बोधन में ज्ञानपीठ की गतिविधियों की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की।

कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी ने आचार्य प्रणीत ग्रन्थों के प्रकाशन की आवश्यकता प्रतिपादित की एवं कहा कि आज जरूरत इस बात की है कि हम आगम की दृष्टि से अपनी कार्य पद्धति बनायें न कि अपनी दृष्टि से आगम को व्याख्यापित करें।

पूज्य उपाध्यायश्री ने अपने आशीर्वचन में संस्थान के कार्यकर्ताओं को शुभाशीष देते हुए कहा कि हम विद्वानों का सम्मान करें तथा उन संस्थाओं का भी सम्मान करें जिन्होंने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को जनसुलभ कराया एवं स्वाध्याय की परम्परा को भी परिपुष्ट किया। आपने जैन साहित्य के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन हेतु ज्ञानपीठ को एवं इस प्रशस्त निर्णय हेतु संस्थान के कार्यकर्ताओं अपना आशीर्वाद प्रदान किया।

कार्यक्रम को निर्णायक मंडल की ओर से श्री सुरेश जैन I.A.S. (भोपाल), शास्त्री परिषद के अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन (फिरोजाबाद), विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष पं.शिवचरनलाल जैन (मैनपुरी) तथा श्री नीरज जैन (सतना) ने भी सम्बोधित किया। आभार माना संस्थान के कार्याध्यक्ष श्री योगेश जैन (खतौली) ने। पुरस्कार प्रायोजक श्री अभयकुमार जैन के सुपुत्र श्री नितिन जैन (अहमदाबाद) एवं पुरस्कार के संयोजक डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) का सम्मान किया गया।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. नीलम जैन (गाजियाबाद) ने किया। इसमें डॉ. रमेशचन्द (कुलपति - मेरठ वि.वि.), डॉ. दिनेश मिश्र (मानद् निदेशक - भारतीय ज्ञानपीठ), डॉ. डी. सी. जैन (वाइस चेअरमेन - वर्द्धमान मेडिकल कॉलेज), डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर), डॉ. शीतलचन्द्र जैन (जयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (दिल्ली), डॉ. सुरेशचन्द जैन (दिल्ली), डॉ. अशोककुमार जैन (लाडनूँ), डॉ. कपूरचन्द्र जैन (खतौली), डॉ. ज्योति जैन (खतौली, श्री विवेक जैन (गाजियाबाद), श्री रवीन्द्र जैन (मुजफ्फरनगर) की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

इस अवसर पर पुरस्कार समिति के संयोजक डॉ. अनुपम जैन के सम्पादकत्व में एक पुस्तिका का प्रकाशन किया गया जिसमें प्रशस्ति एवं भारतीय ज्ञानपीठ के परिचय के साथ ही श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ एवं सहयोगी संस्था प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर का भी परिचय दिया गया।

* 247, प्रथम तल, दिल्ली रोड,
अजन्तास सिनेमा के पास, **मेरठ** - 250 002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जैन सेठी को सम्मानित करते हुए डॉ. नलिन के. शास्त्री (संस्थाध्यक्ष) एवं डॉ. अनुपम जैन (पुरस्कार संयोजक)

डॉ. अनुपम जैन का सम्मान करते हुए डॉ. एल. एम. सिंघवी एवं डॉ. नलिन के. शास्त्री

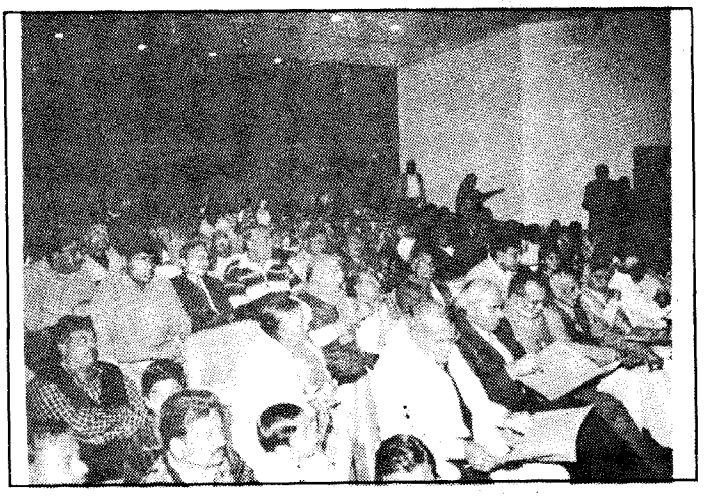

सभागार में उपस्थित विद्वत्जन एवं साहित्य प्रेमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत पुरस्कार राशि में वृद्धि करते हुए वर्ष 2000 से प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000/- की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

वर्ष 1998 का पुरस्कार रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद के पूर्व निदेशक **डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी** को उनकी कृति **'जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'** पर 29.3.2000 को समर्पित किया गया।

वर्ष 1999 का पुरस्कार प्रो. हम्पा नागराजैय्या **(Prof. Hampa Nagarajaiyah)** को उनकी कृति **'A History of the Rastrakutas of Malkhed and Jainism** पर प्रदान किया गया। वर्ष 2000 एवं 2001 के पुरस्कार अलग से घोषित किये जा रहे हैं।

वर्ष 2002 से चयन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया जा रहा है। अब कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव सामग्री सहित प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को अब रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी।

चयनित कृति के प्रस्तावक को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। वर्ष 2002 के पुरस्कार हेतु प्रस्ताव सादे कागज पर एवं सम्बद्ध कृति/आलेख के लेखक तथा प्रस्तावक के सम्पर्क के पते, फोन नं. सहित 31 दिसम्बर 2002 तक सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001 के पते पर प्राप्त हो जाना चाहिये।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोध कार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर विचार – दर्शन संगोष्ठी सम्पन्न

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के तत्त्वावधान एवं प.पू. उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज, उपाध्याय श्री नयनसागरजी महाराज, मुनि श्री वैराग्यसागरजी महाराज, क्षु. श्री समर्पणसागरजी महाराज एवं क्षु. श्री सम्यक्त्वसागरजी महाराज के सान्निध्य में श्री दि. जैन समाज, देवबन्द (उ.प्र.) के सौजन्य से दि. 13 - 14 दिसम्बर 01 को भगवान महावीर विचार दर्शन संगोष्ठी आयोजित की गई जिसमें श्री पं. इन्द्रसेन जैन (सहारनपुर), डॉ. रमेशचन्द जैन (बिजनौर), डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती' (सनावद), पं. पूर्णचन्द जैन 'सुमन' (दुर्ग), श्री शराफत हुसैन (महासचिव - लोकदल), श्री सिद्दीकी मेअर आदि मंचासीन महानुभावों की उपस्थिति में संगोष्ठी का उद्घाटन वक्तव्य डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' ने देते हुए भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकान्त को समाज में सहअस्तित्व, सौहार्द्र एवं समता के लिये उपयोगी बताया। दो दिन तक चली इस संगोष्ठी को डॉ. रमेशचन्द जैन, डॉ. अशोककुमार जैन, डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी', डॉ. सुरेशचन्द्र जैन, डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन, प्रो. हीरालाल पांडे 'हीरक', पं. पूर्णचन्द्र जैन 'सुमन', डॉ. विजयकुमार जैन. डॉ. (श्रीमती) राका जैन, डॉ. शीतलचन्द जैन, डॉ. जिनेन्द्र जैन, प्रा. निहालचन्द जैन, डॉ. सनतकुमार जैन, पं. पंकज जैन, कु. इन्दु जैन, डॉ. विमला जैन 'विमल' आदि विचारकों ने सम्बोधित किया।

इस अवसर पर **उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज** ने कहा कि भगवान महावीर मात्र जैनों के नहीं अपितु जन - जन के हैं। जिसकी आस्था एवं कर्म अहिंसामय है वह जैन है। जो दोषों से रहित है, वही देव है। हम सबका समर्पण उन्हीं देव महावीर के प्रति है। मेरी तो यही इच्छा है कि तत्त्व का अभ्यास हो, अध्यात्म की चर्चा हो तथा सम्यग्दर्शन समता की धारा बहे। विद्वान् और अधिक स्वाध्यायशील हों ताकि पुराने विद्वानों जैसी प्रतिष्ठा अर्जित कर सकें।

■ **डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती', बुरहानपुर** (म.प्र.)

भगवान महावीर के 2600 वर्ष पर कार्यशाला

परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के सान्निध्य में केकड़ी - अजमेर (राज.) में 26 मई 2002 से 30 मई 2002 तक भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक वर्ष पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें प्रत्येक शताब्दी के आधार पर जैन धर्म की स्थिति एवं जैन धर्म के अवदान का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया जायेगा। इसमें देश के प्रसिद्ध इतिहासविद्, पुरातत्त्वविद्, जैन धर्म - दर्शन एवं साहित्य के ज्ञाता शताधिक विद्वानों को आमंत्रित किया गया है। समस्त कार्यक्रम का आयोजन श्री 1008 श्री नेमिनाथ दि. जैन जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति, केकड़ी - अजमेर (राज.) द्वारा होगा।

■ **डॉ. विजयकुमार जैन, लखनऊ, संयोजक**

SUMMER SCHOOL

Apllications are invited from eligible candidates for admission to the following summer schools to be held w.e.f. 26.5.02 to 16.06.02 -

1. Prakrit Language & Literature (Elementary), 2. Prakrit Language & Literature (Advanced), 3. Jain Religion & Philosophy, 4. Manuscriptology and research Methodology.

Eligible candidates can apply to participate in either one of the above courses. These courses will run concurrently.

■ **Dr. Vimal Prakash Jain,** Director - B.L.I.I.
20th Kilometer, G.T. Karnal Road, Alipur, **New Delhi**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्धमान मेडिकल कॉलेज की स्थापना

जीवनशैली ठीक हो तो चिकित्सा की जरूरत ही नहीं पड़ती

दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में 3 दशक के बाद वर्धमान महावीर मेडिकल कॉलेज का उद्घाटन 17 दिसम्बर 2001 को प्रधानमंत्री **श्री अटलबिहारी बाजपेयी** द्वारा किया गया। इस अवसर पर केन्द्रीय गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी और केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री डॉ. सी.पी. ठाकुर एवं अनेक चिकित्सक और जैन समाज के गणमान्य अतिथि मौजूद थे। टाइम्स फाउण्डेशन की अध्यक्ष साहू श्रीमती इन्दु जैन के नेतृत्व में जैन समाज ने इस कॉलेज का नाम वर्धमान महावीर के नाम पर रखने के लिये विशेष प्रयास किये थे। डॉ. सी.पी. ठाकुर ने महावीर के 2600 वें जन्मोत्सव का उल्लेख करते हुए कहा कि प्रधानमंत्री स्वयं महोत्सव समिति के अध्यक्ष हैं। इसलिये इस कॉलेज के साथ वर्धमान महावीर का नाम जोड़ना श्रेयस्कर समझा गया। महावीर ने ही 'जीओ और जीने दो' का मंत्र दिया था, जो कि मेडिकल कालेज और अस्पताल की भावनाओं के अनुरूप है। साथ में उन्होंने यह भी कहा कि जैन समाज ने इस अस्पताल के साथ एक धर्मशाला बनाने का भी प्रस्ताव रखा है जिसमें कि भोजन की भी व्यवस्था होगी। भगवान महावीर के नाम पर कॉलेज का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्रीजी ने अपने उद्बोधन में कहा कि नाम रखना आसान है लेकिन नाम के अनुरूप काम करना एक चुनौती है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि वर्धमान महावीर के नाम से बनाया गया यह कॉलेज अन्य कॉलेजों से कुछ विशिष्ट होगा और अपने नाम को सार्थक करेगा। श्री बाजपेयी ने अपने चिर परिचित मनोविनोद स्वभाव से चुटकी लेते हुए देश के एक प्रतिष्ठित चिकित्सा संस्थान - आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साईंस के सम्मुख स्थापित इस मेडिकल कॉलेज के चिकित्सक समुदाय को झकझोरते हुए कहा कि 'घर ले लिया है तेरे घर के सामने', इसलिये अब इसकी इज्जत बढ़नी चाहिये। प्रधानमंत्री ने चिकित्सा के क्षेत्र में अनुसंधान और खोजों पर जोर देते हुए कहा कि इस क्षेत्र में जितना अनुसंधान होना चाहिये था उसकी ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया। उन्होंने कहा कि वह यह भी जानते हैं कि देश में अस्पतालों और चिकित्सा संस्थानों के सम्मुख जनता को चिकित्सा सुविधा जुटाना एक प्राथमिक आवश्यकता है लेकिन यह भी उतना ही जरूरी है कि भारतीय मेडिकल कॉलेज और अस्पताल विश्व प्रतियोगिता में अपना स्थान बना सकें। इस अवसर पर श्री आडवाणी ने कहा कि इस कॉलेज के नाम के साथ वर्धमान महावीर का नाम जोड़ना भले ही अत्यंत महत्वपूर्ण है लेकिन भगवान महावीर की शिक्षा यही बताती है कि जीवन शैली ठीक हो तो चिकित्सा की जरूरत ही नहीं पड़ती। भगवान महावीर का कहना था कि जीवन शैली शुद्ध होनी चाहिये।

'परिणय प्रतीक' पत्रिका के श्री पाटनी प्रधान सम्पादक एवं श्री बागड़िया संपादक बने

दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा स्थापित दिगम्बर जैन मेरेज ब्यूरो की मासिक पत्रिका 'परिणय प्रतीक' के प्रधान सम्पादक श्री माणिकचन्द जैन पाटनी व सम्पादक श्री पवनकुमार बागड़िया बने।

दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय महामंत्री एवं परिणय प्रतीक के प्रकाशक श्री पाटनी एम.कॉम., एलएल.बी., साहित्यरत्न हैं तथा भगवान महावीर 2600 वाँ जन्मजयंती महोत्सव की केन्द्रीय समिति के सदस्य, मध्यप्रदेश प्रांतीय समिति के कार्याध्यक्ष एवं इन्दौर जिला समिति के परामर्शदाता के रूप में अपनी सेवायें दे रहे हैं।

श्री बागड़िया दिगम्बर जैन महासमिति मध्यांचल के युवा प्रकोष्ठ के मंत्री हैं तथा दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप तथा हूमड़ जैन समाज की अनेक संस्थाओं में पदाधिकारी हैं एवं हूमड़ मित्र पत्रिका व हूमड़ संदेश समाचार पत्र के सम्पादक मंडल के सदस्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अहिंसा' शीर्षक श्रेष्ठ पुस्तक पर रु. 51,000/- के पुरस्कार की घोषणा

श्री दिगम्बर जैन साहित्य संरक्षण समिति, दिल्ली द्वारा भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में भगवान महावीर के मूल सिद्धान्त **'अहिंसा'** शीर्षक पर श्रेष्ठ पुस्तक पर रु. 51,000/- का पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। पुस्तक के सृजन में इच्छुक विद्वत्जन निम्न पते पर सम्पर्क करें। यह पुरस्कार वर्ष 2003 में आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में प्रदान किया जायेगा। विशेष जानकारी के लिये निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें -

श्री शिखरचन्द जैन/श्री प्रवीणकुमार जैन
श्री दिगम्बर जैन साहित्य/संस्कृति संरक्षण समिति
डी - 302, विवेक विहार, दिल्ली - 110 065

लन्दन विश्वविद्यालय के जैन विद्या अध्ययन विभाग में कर्मशाला

लन्दन विश्वविद्यालय के पूर्वी तथा अफ्रीकी अध्ययन केन्द्र ने जैन अध्ययन विभाग में मार्च 2002 में 'जैन विद्या के विविध पक्ष' पर एक कर्मशाला तथा विशिष्ट व्याख्यान आयोजित किये गये। इसमें 5 देशों के नौ विद्वानों ने 'श्वेताम्बर साधु - साध्वियों के आचरण', 'जैन अवधारणाओं में भ्रूण परिवर्तन', 'खजुराहो' तथा 'करुणा' पर 45 - 45 मिनिट के शोधपत्र पढ़े और प्रश्नोत्तरी में विविध समाधान किये। डॉ. कोर्ट ने तारण स्वामी पर विशेष भाषण दिया। इस कर्मशाला में भारत की ओर से रीवां के डॉ. नन्दलाल जैन भी सम्मिलित हुए। अपने शोधपत्र के अतिरिक्त उन्होंने 'जैनधर्म और विज्ञान' तथा 'अकलंक और तत्वार्थ सूत्र' पर भी व्याख्यान दिये।

■ **डॉ. नंदलाल जैन, रींवा**

डॉ. राजाराम जैन राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार सम्मान से सम्मानित

गत 6 फरवरी 2002 को प्रो. डॉ. राजाराम जैन, आरा (बिहार), मानद निदेशक - श्री कुन्दकुन्द भारती शोध संस्थान, नई दिल्ली को राष्ट्रपति भवन के अशोक सभागार में राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्राकृत, जैन विद्या एवं दुर्लभ प्राकृत - अपभ्रंश पांडुलिपियों के श्रमसाध्य एवं धैर्यसाध्य सम्पादन कार्यों का मूल्यांकन कर भारत सरकार ने उन्हें सम्मानित करने का गतवर्ष निर्णय लिया था। अपने क्षेत्र का यह भारत का सर्वोच्च पुरस्कार माना जाता है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से बधाई।

■ **गोपाल प्रसाद**
व्याख्याता - प्राकृत विभाग, **आरा**

अहमदाबाद में तीन विद्वानों का विशिष्ट सम्मान

संबोधि संस्थान एवं बाबूलाल अमृतलाल चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद के तत्त्वावधान में भाईकाका भवन में सन्निष्ठ विद्वानों को पुरस्कृत करने का सुंदर कार्यक्रम दिनांक 2.12.01 को आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में अध्यक्ष के रूप में गुजराती के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार श्री भोलाभाई पटेल एवं अतिथिविशेष के रूप में श्री कुलीनचन्द्र भाई याज्ञिक (पूर्व कुलपति) विराजमान थे। समारोह में प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के प्रखर विद्वान् श्री रमणीकभाई एम. शाह (अहमदाबाद) को रु. 31,000/-, शाल एवं सुन्दर कलात्मक प्रशस्तिपत्र तथा जैन श्रमण परम्परा में गच्छों की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में अनूठा संशोधन करने वाले डॉ. शिवप्रसाद (बनारस) को 'संबोधि संस्थान' की ओर से रु. 11,000/-, शाल एवं सुन्दर कलात्मक प्रशस्तिपत्र समारोह के अध्यक्ष एवं अतिथिविशेष के हाथों अर्पण किये गये। प्राचीन जिन प्रतिमाएँ एवं प्राचीन जैन साहित्य पर दीर्घकालीन संशोधन करने वाले बैंगलोर के मेधावी विद्वान् हम्पा नागराजैय्या को बाबूलाल अमृतलाल शाह चेरिटेबल ट्रस्ट की ओर से श्री अमी भाई ने **'बाहुबली सुवर्ण चन्द्रक'** एवं प्रशस्तिपत्र अर्पण किया। पुरस्कृत विद्वानों को बधाई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजकीय स्थापत्य एवं कला संग्रहालयों में पृथक जैन कला वीथिका (गैलरी) की स्थापना

भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में केन्द्र, राज्य सरकारें तथा जैन संगठनों द्वारा विभिन्न राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। इसी सन्दर्भ में विनम्र प्रस्ताव है कि दिल्ली एवं सभी राज्यों के शासकीय स्थापत्य एवं कला संग्रहालयों में जैन स्थापत्य एवं कला वीथिकाओं (गैलरी) की स्थापना की जाना चाहिये, ताकि जैन कलाकृतियों के अध्ययन एवं मूल्यांकन में सुविधा प्राप्त हो सके। जैन शिल्प एवं कलाकृतियों की निजी विशिष्टता एवं महत्व है। लगभग 5000 वर्ष ईसा पूर्व की हड़प्पा सभ्यता से आरम्भ होकर अर्वाचीन कालतक निरन्तर जैन स्थापत्य कला भारतीय संस्कृति को समृद्ध करती रही है, परन्तु दुर्भाग्यवश यह समुचित मूल्यांकन एवं प्रशस्ति से वंचित रही है। यह कैसा विडम्बना है कि विश्वविख्यात 'ग्यारसपुर की यक्षी' (सुर-सुंदरी) के प्रदर्शन में इसका उल्लेख जैन कलाकृति के रूप में नहीं किया जाता और ऐसी ही प्रवंचना मूर्ति शिल्प की प्रशंसनीय कलाकृति जैन मन्दिर पल्लू की सरस्वती, राजकीय संग्रहालय दिल्ली में प्रदर्शित, को झेलना पड़ रही है। यहाँ भी जैन शब्द आश्चर्यजनक रूप से गायब है। यही स्थिति यहाँ प्रदर्शित अनेक जैन कलाकृतियों की है। अतः यह अति आवश्यक है कि जैन कलाकृतियों की सही पहचान की जाये और इसका प्रथम चरण है **पृथक जैन वीथिका की स्थापना।** दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में भगवान बुद्ध के 2500 वें निर्वाण महोत्सव पर प्रथम बुद्ध वीथिका बनाई जा चुकी है। परन्तु भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव पर बौद्ध वीथिका की तरह जैन वीथिका की स्थापना को आवश्यक नहीं समझा गया। इस यक्ष प्रश्न का उत्तर किसके पास है? आशा है कि जैन समाज अब जागरूक होकर कदम दर कदम उपेक्षा का शिकार बनने के तिरस्कार का परिमार्जन करने के लिये समुचित कार्यवाही करेगा।

■ **कैलाशचन्द जैन,** मंत्री - श्री दिग. जैन मानस्तम्भ समिति, बेलगछिया, **कोलकाता**

'वर्धमान' पुस्तक का वितरण रोका गया

एक पुस्तक 'वर्धमान' का प्रकाशन भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन द्वारा किया गया था। मगर बाद में उभरे तथ्यों से पता चला कि उसमें दिगम्बर जैन मान्यताओं के विरूद्ध कुछ आपत्तिजनक बातें तथा अनेक चित्र प्रकाशित हो गये। इस पुस्तक की प्रस्तावना महासमिति की कार्याध्यक्ष श्रीमती इन्दु जैन ने लिखी थी। उन्होंने स्पष्ट किया है कि उन्होंने समय के अभाव के कारण पुस्तक को बगैर पढ़े ही प्रस्तावना छपने के लिये दे दी थी। उन्हें इसका बहुत खेद है। उनका कहना है कि यह तथ्य सामने आने पर तुरंत ही इस पुस्तक का वितरण रोक दिया गया और आगे उसका कोई और संस्करण प्रकाशित न करने का निर्णय लिया गया। उन्होंने कहा कि उन्हें इस बात का बहुत पश्चाताप है कि समाज के अनेक भाई-बहनों और संस्थाओं की भावना को इस पुस्तक के प्रकाशन से ठेस पहुँची। उन्होंने भरोसा दिलाया है कि भविष्य में जो भी पुस्तक छपेगी, उस पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जायगे और सभी की भावनाओं का पूरा सम्मान किया जायेगा।

रींवा विश्वविद्यालय द्वारा अर्हत् वचन को मान्यता

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रींवा ने विज्ञप्ति क्रमांक प्रा.स./अ.म./2001/1005, दिनांक 21.12.2001 द्वारा जैन समाज की निम्नलिखित बहुचर्चित एवं सर्वोपयोगी 4 पत्रिकाओं को शोध पत्रिका की मान्यता प्रदान की है - **अर्हत् वचन - इन्दौर, प्राकृत विद्या - कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली, शोधादर्श - लखनऊ** एवं **वीतराग वाणी - टीकमगढ़।**

ज्ञातव्य कि अन्य कई विश्वविद्यालयों द्वारा पूर्व से ही अर्हत् वचन को शोध पत्रिका का मान्यता अघोषित रूप में प्राप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में जैन गणित की धूम

सम्मेलन में सम्मिलित जैन गणित के अध्येताओं का दल
क्रमशः श्रीमती उज्जवला डोंडगाँवकर, श्री एन. शिवकुमार, प्रो. (श्रीमती) पद्मावतम्मा,
डॉ. अनुपम जैन, श्री दिपक जाधव एवं श्रीमती प्रगति जैन

भारतीय गणित इतिहास परिषद (I.S.H.M.) एवं रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली द्वारा गत 20 - 23 दिसम्बर 2001 के मध्य भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली (I.N.S.A.) में First International Conference of New Millenium in History of Mathematics का सफल आयोजन किया गया। इस अन्तर्राष्टीय सम्मेलन में ब्रिटेन, अमेरिका, इजराइल, कनाड़ा, ईरान आदि देशों के अनेक प्रतिनिधियों ने अपनी प्रभावी उपस्थिति दी। 12 विदेशी एवं 49 भारतीय शोध पत्रों की श्रृंखला में निम्नांकित 6 शोध पत्र जैन गणित से सम्बद्ध प्रस्तुत किये गये -

1. **Dr. Anupam Jain,** Dept. of Mathematics, Holkar Autonomous Science College, Indore (M.P.), *'Prominent Jaina Mathematicians and their Works'.*
2. **Mr. Dipak Jadhav,** Lecturer in Mathematics, J.N. Govt. Model High School, Barwani (M.P.), *'Theories of Indices and Logarithms in India from Jaina Sources'.*
3. **Mr. N. Shiv Kumar,** Head, Dept. of Mathematics, R.V. College of Engineering, Banglore (Karnataka), *'Direct Method of Summation of Life Time Structure Matrix in the Gommaṭasāra'.*
4. **Prof. Padmavathamma,** Dept. of Mathematics, University of Mysore, Mysore (Karnataka), *'Sri Mahāvirācarya's Ganiṭasāra - saṁgraha'.*
5. **Mrs. Pragati Jain,** Lecturer in Mathematics, ILVA College of Science and Commerce, Indore, *'Mathematical Contributions of Ācārya Virasena'.*
6. **Mrs. Ujjawala Dondagaonkar,** Eienstien International Foundation, Nagpur, *'A Brief Review of Literature of Jaina Karma Theory'.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन 6 शोध पत्रों के माध्यम से जैन गणित के विविध पक्षों की प्रभावी प्रस्तुति की गई। संगोष्ठी के समापन सत्र में Jaina School की ओर से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हेतु डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर को आमंत्रित किया गया।

डॉ. जैन ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि मैं लगभग 23 वर्षों से I.S.H.M. से जुड़ा हूँ। भारतीय गणित इतिहास परिषद की शोध पत्रिका **गणित भारती** के प्रकाशन के अतिरिक्त अन्य गतिविधियाँ लगभग 1½ दशक से सुस्त पड़ी थी, गत 2 वर्षों से पुन: गति आई है, इसी का प्रतिफल है कि जैन गणित के अध्ययन के कार्य में प्रगति हो रही है। I.S.H.M. के इस मंच से प्रो. बी.बी. दत्त, प्रो. ए.एन. सिंह एवं प्रो. एल.सी. जैन के काम को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी एवं जैनाचार्यों के गणितीय कृतित्व के सम्यक अध्ययन से भारतीय गणित इतिहास के पुनर्लेखन का पथ प्रशस्त होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

जैन गणित के अध्ययन में संलग्न हम सभी कोचीन में प्रस्तावित आगामी सम्मेलन में सम्मिलित होने का विश्वास दिलाते हुए परिषद की शोध पत्रिका **गणित भारती** की आवृत्ति बढ़ाने का अनुरोध करते हैं।

जैन गणित इतिहास के इन सभी अध्येताओं का दल डॉ. अनुपम जैन के नेतृत्व में **पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी** के दर्शन हेतु राजाबाजार गया। वहाँ पूज्य माताजी ने सभी को साहित्य भेंट कर मंगल आशीर्वाद दिया। प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी एवं क्षु. मोतीसागरजी ने विद्वानों को सम्बोधित कर उन्हें शोध कार्यों में पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिह्न, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

1993 से 1999 के मध्य संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर), प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (नई दिल्ली), प्रो. राधाचरण गुप्त (झांसी) एवं डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (इन्दौर) को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

वर्ष 2000 एवं 2001 हेतु प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। वर्ष 2002 हेतु जैन विद्याओं के अध्ययन से सम्बद्ध किसी भी विधा पर लिखी हिन्दी/अंग्रेजी, मौलिक, प्रकाशित/अप्रकाशित कृति पर प्रस्ताव 31 दिसम्बर 02 तक सादर आमंत्रित हैं। निर्धारित प्रस्ताव पत्र एवं नियमावली कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय से उपलब्ध है।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

31.3.2002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन त्रैमासिक पत्रिका का छमाही संयुक्तांक (जुलाई - दिसम्बर 01) प्राप्त हुआ। प्रारम्भ से ही इस पत्रिका में ज्ञानोपयोगी, पठनीय सामग्री होने से इसका बैचेनी से इंतजार रहता है, जबकि इस बार छ माह तक बाँट जोहनी पड़ी।

इसके साथ ही पत्रिका में कागज कुछ हल्का उपयोग में लेने से इसकी सुन्दरता को भी ठेस लगी। पृष्ठों की संख्या कम किये जाने से आलेख भी कम प्रकाशित किये गये हैं, इससे पाठकों की तृष्णा की पूर्ति नहीं हो पाती है। बड़ी कृपा होगी अगर आप पत्रिका को त्रैमासिक रख उसका कागज तथा पृष्ठ संख्या पूर्ववत करके उसका स्तर यथावत कायम रख सकें।

■ **माणिचन्द जैन पाटनी**

2 जनवरी 2002 राष्ट्रीय महामंत्री - दि. जैन महासमिति, **इन्दौर**

अर्हत् वचन का जुलाई - दिसम्बर 2001 अंक प्राप्त हुआ। आभारी हूँ। अंक की सामग्री पठनीय एवं संग्रहणीय है। परिश्रम और प्रस्तुति के लिये साधुवाद।

4 जनवरी 2002 ■ **डा. भगवतीलाल राजपुरोहित, उज्जैन**

अर्हत् वचन वर्ष - 13, अंक - 3 - 4 मेरे समक्ष है। 'आगमिक सन्दर्भों के शिल्पी : वैज्ञानिक इतिहासकार यतिवृषभ' शोधालेख श्री सूरजमल बोबरा के गहन अध्ययन का प्रतीक है। लेखक ने बहुत से तथ्य उद्घाटित किये हैं जिनसे जैन गणितज्ञों को उच्च स्तर पर स्थान प्राप्त होता है।

'द्वादशांग श्रुत और उसकी परम्परा' लेख भी द्वादशांग पर अच्छा प्रकाश डालने वाला है। 'अर्हत् वचन' के इस संयुक्त अंक में सम्पादकीय का अभाव कुछ खटकता सा रहा। हर अंक में सम्पादकीय का अपना वैशिष्ट्य रहता है।

10 जनवरी 2002 ■ **ब्र. संदीप 'सरल'**

संस्थापक - अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, **बीना**

अर्हत् वचन का जुलाई - दिसम्बर 2001 अंक प्राप्त हुआ, धन्यवाद। पत्रिका देखने में आकर्षक एवं पढ़ने में उपयोगी है। पत्रिका के आवरण पृष्ठ पर कुण्डलपुर के बड़े बाबा - भगवान ऋषभदेव का चित्र पत्रिका को सार्थकता प्रदान करता है। पत्रिका के आलेख, टिप्पणियाँ एवं आख्याएँ ज्ञानवर्द्धक हैं।

सरल, सहज एवं प्रवाहमयी हिन्दी के माध्यम से ऐसी उपयोगी जानकारी देने के लिये पत्रिका प्रकाशन से जुड़ा समस्त परिवार साधुवाद का पात्र है। सम्पादकीय की सतत प्रक्रिया क्यों रुक गई है? हमें इसकी प्रतीक्षा रहती है।

22.01.02 ■ **प्रो. बी. के. जैन**

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष - वाणिज्य विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., **सागर**

भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर पांडुलिपियों में छिपी हुई है जिनको कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के विद्वानों के द्वारा कठिन परिश्रम से उजागर किया जा रहा है। उचित समय आने पर इनकी मेहनत अवश्य सफल होगी तथा हमें ऐसे अनेक तथ्यों की जानकारी मिलेगी जिन पर हमारी आने वाली पीढ़ी अवश्य गर्व करेंगी।

2.3.02 ■ **डॉ. जे. सी. पालीवाल, खरगोन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित साहित्य

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
* 1.	जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81 - 86933 - 00 - X	200.00
2.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 01 - 8	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 02 - 6	1.50
4.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 03 - 4	3.00
5.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 04 - 2	4.00
6.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 05 - 0	4.00
7.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 06 - 9	4.00
8.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 07 - 7	4.00
9.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 08 - 5	6.00
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 09 - 3	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 10 - 7	6.00
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 11 - 5	6.00
13.	The Jaina Sanctuaries of the Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Shastri	81 - 86933 - 12 - 3	500.00
14.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81 - 86933 - 13 - 1	10.00
15.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 14 - X	70.00
16.	Jain Dharma - Vishwa Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81 - 86933 - 15 - 8	20.00
17.	अमर ग्रन्थालय में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा. - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81 - 86933 - 16 - 6	200.00
18.	आचार्य कुन्दकुन्द श्रुत भण्डार, खजुराहो में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81 - 86933 - 17 - 4	200.00
19.	मध्यप्रदेश का जैन शिल्प	श्री नरेशकुमार पाठक	81 - 86933 - 18 - 2	300.00
20.	भट्टारक यशकीर्ति दिग. जैन सरस्वती भण्डार, ऋषभदेव में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81 - 86933 - 19 - 0	200.00
21.	जैनाचार विज्ञान	मुनि सुनीलसागर	81 - 86933 - 20 - 4	20.00
22.	समीचीन सार्वधर्म सोपान	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81 - 86933 - 21 - 2	20.00
23.	An Introduction to Jainism & Its Culture	Pt. Balbhadra Jain	81 -186933 - 22 - 0	100.00
24.	Ahimsa : The Ultimate Winner	Dr. N.P. Jain	81 -186933 - 23 - 9	100.00
25.	जीवन क्या है?	डॉ. अनिलकुमार जैन	81 - 186933 - 24 - 7	50.00

* अनुपलब्ध

नोट : पूर्व के सभी सूची पत्र रद्द किये जाते हैं। मूल्य परिवर्तनीय हैं।

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद द्वारा लिखित तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा सयुंक्त रुप से प्रकाशित पुस्तक 'जीवन क्या है?' का विमोचन करते हुए प्रो. नरेन्द्र धाकड़, प्रचार्य-होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

'जैन इतिहास के उपेक्षित पहलू' शीर्षक सत्र के मंच पर आसीन पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी (अध्यक्ष-विद्वत् महासंघ), श्रीमती सुमन जैन, श्री प्रदीपकुमार सिंह कासलीवाल (राष्ट्रीय अध्यक्ष-महासमिति) एवं डॉ. रमेश जैन, भोपाल (MACTI)

First International Conference of New Millenium on History of Mathematics (New Delhi, 20-23 Dec.01)

के समापन सत्र को सम्बोधित करते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार-पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199/88

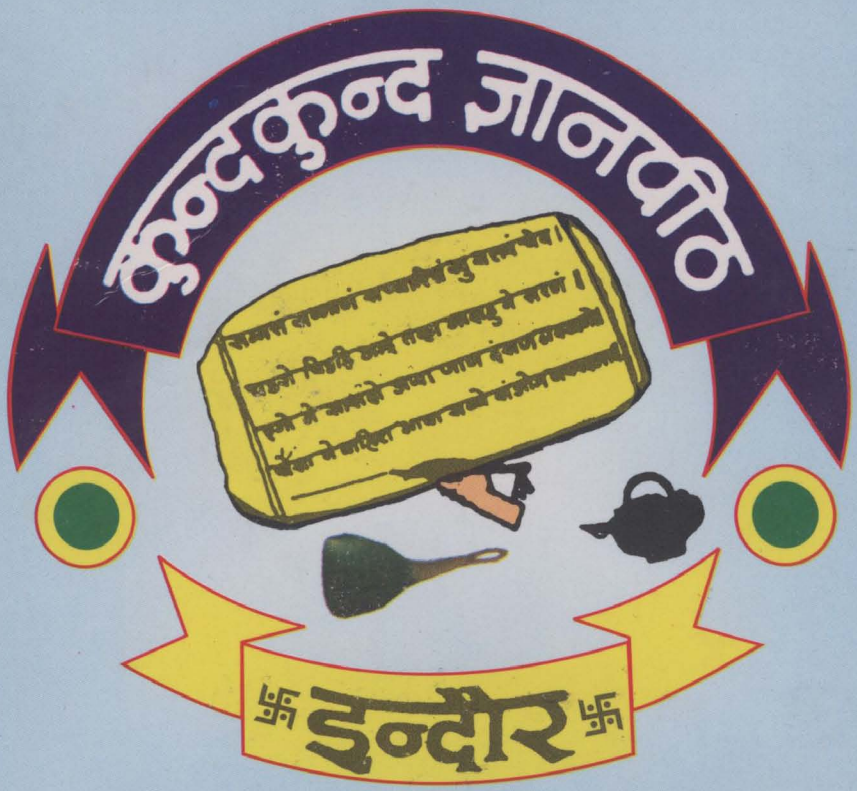

स्वामी श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इंदौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स**, सिटी प्लाजा म.गां. मार्ग इंदौर फोन-538283 द्वारा मुद्रित

मानद सम्पादक-**डॉ. अनुपम जैन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org